दिव्य-दोहावली

सीदत भव-रुज सौं सदा,
गुन न करत रस कोय।
जाहि न लगत कवित्त रस,
ताकी दवा न होय॥
'दिव्य'

लेखक तथा चित्रकार :—

अम्बिकाप्रसाद वर्मा बी० ए० 'दिव्य'

प्रकाशक—
गयाप्रसाद वर्मा
टीकमगढ़ (बुन्देलखण्ड)

प्रथमावृत्ति
१०००

श्री तुलसी-जयन्ती
सं० १९९३ वि०

मूल्य १)
सजिल्द १।)

मुद्रक—
महेशप्रसाद गुप्त,
केसरवानी प्रेस,
इलाहाबाद

'सुकवि-सरोज', 'बुन्देल-वैभव' और 'गीता-गौरव'

के

यशस्वी लेखक

श्री० पं० गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

द्वारा

लिखित

भूमिका

भूमिका

संसार में जिस प्रकार प्राणि मात्र के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये हवा जल और अन्न अनिवार्य हैं उसी प्रकार ही मस्तिष्क को संयत रखने के लिये साहित्य की बड़ी ही आवश्यकता है। साहित्य ही शिक्षित समुदाय का जीवन प्राण है, साहित्यिक परिज्ञान ही से मनुष्य यथार्थ में मनुष्य कहलाने योग्य होता है। कविवर भर्तृहरि जी ने तो यहाँ तक माना है कि :—

साहित्य संगीत कला बिहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छ विषाण हीनः
तृणं न खादन्नपि जीवमान्
स्तद्भाग धेयं परमं पशूनाम्

सचमुच ही साहित्यकारों और कवियों की हृदय तंत्री से झंकृत मधुर काव्यमय स्वरावलि ही से संसार में सच्चा आनन्द और अमरत्व प्राप्त हुआ करता है। किसी भी समय की पूर्वापर परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमको यह आवश्यक होता है कि उसके तत्कालीन साहित्य की ओर दृष्टिपात करें। साहित्यिक ग्रन्थ ही हमें देशकाल की वास्तविक परिस्थिति उसके समय समय के परिवर्तन मानव समाज का अंतरङ्ग और वहिरङ्ग वातावरण आदि का वास्तविक विवरण

दिया करते हैं, निष्कर्ष तो यह है कि साहित्यिक उन्नति ही के ऊपर प्रत्येक जाति, देश, तथा मानव-समाज की उन्नति अवलम्बित हुआ करती है।

आचार्यों ने साहित्य के दो मुख्य विभाग माने हैं (१) ज्ञान प्रधान और (२) भाव प्रधान।

काव्य

ज्ञान प्रधान के अन्तर्गत दर्शन, इतिहास भौतिक विज्ञान आदि की गणना है और भाव प्रधान के अंतर्गत काव्य साहित्य माना गया है प्रसंगवश काव्य साहित्य ही पर कुछ शब्द यहाँ लिखे जा रहे हैं।

मनुष्य-जीवन का मुख्य ध्येय आनन्द प्राप्त करना माना गया है उस ही को प्राप्त करने के लिये हमारे महर्षियों ने ललित कलाओं को जन्म दिया था। काव्य ललित कला ही का एक मुख्य अंग है। काव्य से कवि तो आनन्द-लाभ प्राप्त करता ही है किन्तु साथ ही साथ संसार के कितने ही प्राणियों को वह आनन्द देने में समर्थ होता है। इसी से ललित कलाओं में काव्य को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

कविता का सम्बन्ध हृदय और मस्तिष्क दोनों ही से है। कवि जितना ही अधिक प्राकृतिक सौंदर्य, मानव जीवन की अंतस्तल भावनायें और सामयिक विचार प्रवाह को अध्ययन कर मनोरंजक भाषा में व्यक्त करने में समर्थ होता है उतना ही वह कवि सफल और उतनी ही उसकी कविता आनन्द देने वाली मानी जाती है।

छंद शास्त्र में (१) प्रबन्ध काव्य और (२) मुक्तक काव्य इस प्रकार पद्यात्मक काव्य के दो मुख्य भेद माने गए हैं, मुक्तक काव्य में रचना करना कुशल कवियों ही का कार्य है। सुप्रसिद्ध दोहाकार कविवर रहीम जी ने ठीक ही कहा है :—

"दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आँहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिट कूँदि कढ़ि जाँहिं ॥

दिव्य दोहावली भी इस ही प्रकार के प्रयत्न का एक फल है। समय समय पर लिखे गये कवि के ३३७ दोहों का दिव्य संग्रह दिव्य दोहावली के रूप में प्रस्तुत है। इसके रचयिता श्री बाबू अम्बिका प्रसाद जी वर्मा बी० ए० "दिव्य" मेरे मित्र हैं। पुस्तक छप चुकने पर आपने उस पर भूमिका लिख देने के लिये मुझसे आग्रह किया। वैसे तो प्रत्येक दोहे में उनके हृदयंगत भावों की भूमिका भरी हुई है, प्रत्येक दोहा अपने साथ एक एक भावपूर्ण भूमिका और सुन्दर कथानक लिये हुए है, वे स्वयं अपनी भूमिका कह रहे है। फिर भी दिव्य जी जैसे सरस और प्रेमी मित्र का अनुरोध न मानना उचित न होता अतः शीघ्रता में जो कुछ भी लिखा जा सकना सम्भव है यहाँ लिखा जारहा है।

साहित्य कारों ने कवि को "कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः" माना है। वे कवि, जो अपनी प्रसाद मयी कविताओं द्वारा भाषा-भारती का भण्डार भरने में समर्थ होते हैं सचमुच ही धन्य हैं। यहाँ कविता विषयक गहन विवेचनाओं से पुस्तक का कलेवर बढ़ाना

अभीष्ट नहीं है उसके लिये और कितने ही ग्रंथ भरे पड़े हैं। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक के काव्याङ्गों पर प्रकाश डाल देना अनुपयुक्त न होगा।

काव्याङ्ग

कविता के मुख्य अंग, भाषा, अलंकार, रस, भाव और अर्थ गौरव ही हुआ करते हैं। भाषा को कविता का कलेवर, अलंकार को उसे सुसज्जित करने वाला आभूषण, रस को कविता का प्राण, भाव को हृदय और अर्थ गौरव को विशाल मस्तिष्क माना गया है।

भाषा

काव्य का कलेवर भाषा ही हुआ करती है। कविता की भाषा कैसी होना चाहिये यह एक विचारणीय विषय है। वैसे तो "भाव अनूठो चाहिये भाषा कोई होइ" वाली उक्ति के अनुसार कवियों को भाषा की बड़ी ही स्वच्छन्दता दे दी गई है किन्तु प्रायः देखा यही गया है कि साधारण बोल चाल की भाषा से कविता की भाषा कुछ प्रथक ही हुआ करती है। ब्रजभाषा की कविता में जो शब्द व्यवहृत किये गये हैं वे उसी रूप में ब्रजभाषा में न तो तब ही बोले जाते थे और न अब बोले जाते हैं यही दशा खड़ी बोली और बोल चाल की भाषा में लिखी गई कविताओं की है। निष्कर्ष यही निकलता है कि कविता की भाषा साधारण भाषा से प्रथक ही होती है। दिव्य दोहावली भी उसी भाषा में लिखी गई है जिसे ब्रजभाषा कहा जाता है।

अलंकार दिव्य दोहावली में अलंकारों की बहुलता है। अनुप्रास, श्लेष, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि अलंकारों पर आपने कितने ही दोहे लिखे हैं। कुछ उदाहरण यहाँ लिखे जाते हैं।

अनुप्रास :—

कलित-अंक कलधौत की, काह चाहिये लंक।
ह्वै मयंक जो दीठि कौं, पीठहु कौं पर्यंक ॥१३६॥

पिय आवन की बाट में, लटकी दिहरी द्वार।
अटकी रहत किवार सी, झटकी सो सुकुमारि॥१४१॥

मोह चूर सब होत है, द्रोह होत है दूर।
ओहि नूर सौं मिलत है, कोहनूर कौं नूर ॥२६८॥

जात न अबहूं ऊबरी, जड़हु खूबरी प्रान।
भई दूबुरी तऊ नहिं, देत कूबुरी त्रान ॥३००॥

छविकन पलकन फटकि तिय, फैंकत जेकन हैं न।
होत अकिंचन जगत कौं, कंचन कन तें ऐन ॥३०१॥

यमक :—

जात पीयु की देहरी, देत देहरी डार।
देहि न ऐसिन देहरी, जिन्हें नेहु री भार ॥१८१॥

बानो लेत बिदेह कौ, बिसरत अपनी बान।
जाहि लगत दृग बान है, ताहि मिलत निर्वान॥३२१॥

बालि रह्यो अति बली कै, बली कै अति यहि बाल।
अरध अरध बल लेत है, यहि कौ इक इक बाल॥३२३

श्लेष :—

गलीँ करत नव तरुन तें, हरत सुमन वर वीरि ।
नचत कि वार विलासिनी, चलत कि त्रिविध समीर॥४२॥
कँह सखि मिलन मदान में, भरे उजास उमङ्ग ।
जीवन में मिलि नेह जस, खरे खिलावत रङ्ग ॥६६॥

उत्प्रेक्षा :—

सोहत बिन्दी भाल पै, कालिन्दी मझधार ।
इन्दी वर पै चढ़ी जनु, इन्द्र वधू सुकुमार ॥१२८॥
बड़े नाज सौं कढ़त हैं, लाज लदे कछु वैन ।
लादि मनहुँ गजराज कौं, मूसी भाज सकैन ॥२०३॥

रूपक :—

फाँदि दीठि-गुनि मन घटहिं, रूप कूप में डारि ।
को न पियत जगमग चलत, सुखमा सलिल निकारि॥३॥
दरस्यो यौवन अरुन अब, हरष्यौ मुख जल-जात ।
अतनु-तरनि लै किरन धनु, उयौ चहत यहि गात॥६॥
रमनी-रमना में रमत, मन-मृग राज विशेष ।
जब मन मैन-महीप के, आवत करत निशेष ॥१०॥

भाषा, और अलंकार के अतिरिक्त रस, भाव, और अर्थ-गौरव आदि की दृष्टियों से भी दिव्य दोहावली कम प्रशंसनीय नहीं है। कितने ही दोहे तो बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं :—

देखिए विरह वर्णन करते हुये कवि ने कुछ दोहे कितने मार्मिक और चुटीले लिखे हैं। यथा :—

लखि विरहिन के प्रान सखि, मोचहुं नाहिं दिखात ।
फिर फिर आवत लैन पै, मुओ समुझि फिरि जात॥१॥

विरहग्रस्त नायिका की शोचनीय दशा का कैसा सजीव चित्रण है, बिरहिणी के प्राण लेने के लिये मृत्यु बार बार आती है किंतु विरहिणी को मृत ही जान कर लौट जाती है। मृत्यु को विरहिनी के जीवित रहने का ज्ञान ही नहीं होता है।

कविवर बिहारीदास जी मिश्र तथा पं० दुलारेलाल जी भार्गव ने भी इस प्रकार ही के वर्णन किये हैं, उन्हें भी देखिये :—

करी विरह ऐसी तऊ, गैल न छाँड़त मीचु।
दीनै हू चश्मा चखन, चाहै लहै न मीजु॥

"विहारी"

कठिन विरह ऐसी करी, आवत जबै नगीच।
फिरि फिर जात दसा लखैं, कर दग मोचत मीच॥

दुलारे दो०

आगे चल कर वर्मा जी फिर कहते हैं :—

घाली विरहा बाघ की, को छूवे सखि तोय।
मीचहु फिर फिर जात लखि, सभय स्यार सी होइ
॥७४॥

इस प्रसिद्ध लोकोक्ति को कि सिंह के शिकार पर अन्य कोई भी जन्तु मुँह नहीं डालता, कवि ने चतुराई से व्यक्त किया है और खूबी यह है कि 'करी विरह ऐसी तऊ' का भी वर्णन उत्तमता से निभ गया है।

विरहासक्ति के समय दृष्टि पथ में आने वाली प्रत्येक वस्तु विरह-मय ही देख पड़ती है। प्यारे के

विरह में अणु परमाणु तक विरह में डूबा हुआ दिखलाई पड़ता है भक्त प्रवर सूरदास जी की सूक्ति है :—

ऊधौ यहि व्रज बिरह बढ़्यो।
घर बाहर सरिता बन उपवन, बल्ली द्रुमन चढ़्यो
वासर रैन सधूम भयानक दिसि दिसि तिमिर मढ्यो
द्वंद करत अति प्रबल होत पुर पयसौं अनल उठ्यो
जरि किन होत भस्म छिन महियाँ हा हरि मन्त्र पढ़्यो
सूरदास प्रभु नन्द नँदन बिनु नाहिं न जात कढ़्यो
"सूर"

इसी कारण विरहिणी नायिका को पावस का आना रुचिकर प्रतीत नहीं होता है श्री ईसुरी जी की विरहिणी तो विरहा सक्ति के उपादानों तक को दूर कर देने का आग्रह करती है :—

हम पै वैरिन बरसा आई,
हमें बचा लेव माई।
"चढ़ के अटा घटा ना देखें पटा देव अगनाई।
वारादरी दौरियन में हो पवन न जावै पाई॥
जे द्रुम कटा छुटा फुल बगियाँ हटा देव हरिआई।
पिय जस गाय सुनावन"ईसुर'जा जिय चाहु भलाई॥

दिव्य दोहावली की नायिका की भी यही दशा है, विरहिणी को काले रंग की कूकती हुई कोकिला अपने जले हुये हृदय को आह की भाँति प्रतीत होती है, उस अर्ध दग्ध घड़ी घड़ी कराहने वाली, विरह-वन्हि-दग्ध विरहिणी के हृदय की आह और काले रंग की कोकिला में समानता का भ्रम उत्पन्न हो जाता है यथा :—

घरी घरी जो अधजरी, उठत कराहि कराहि ।
है कै कारी कुहिलिया, कै यह हिय की आह ॥४६॥

एक विरहिणी कहती है कि जो सुलग सुलग कर शरीर के सम्पूर्ण अंगों को भस्म किये डालता है वह चन्द्रमा नहीं है, हे चकोर! वह तो अँगारा है तूँ उड़ कर उसे क्यों नहीं चुन लेती :—

दाहत है विरहीन कौं, सुलगि सुलगि सब गात ।
शशि न अरे अंगार यहु, किन चकोर उड़ि खात॥७७॥

कविवर बिहारीदास जी ने भी इस प्रकार ही विरहिणी नायिका से कहलाया है कि मैं ही विरहवश बावली हो रही हूँ। जिससे शीत कर चन्द्रमा की शीतल किरणें मुझे तप्त ज्ञात होती हैं अथवा सब गाँव ही पागल हो गया है (जिससे उनको चन्द्रमा की किरणें जो कि ताप दे रही हैं शीतल लगती हैं) आश्चर्य है कि ये सब शशि को (जो कि संतापित करनेवाला है) क्यों शीत कर मानते हैं।

हौंही बौरी बिरह बस, कै बौरो सब गाँव ।
कहा जानिये कहत हैं, ससिहिं सीत कर नाँव ॥

"बिहारी"

सुन्दरता में ईश्वर का अधिक अंश होता है ऐसी लोकोक्ति है दार्शनिक रस्किन तो सौंदर्य ही को ईश्वर मानता था। निस्सन्देह यह समस्त संसार सौंदर्य का पुजारी है। सौंदर्य दर्शन से किसे आनन्द नहीं मिलता, किसकी आखें सौंदर्य दर्शन की लालची नहीं होतीं, सौंदर्य सुधा-पान के लिये संसार-पथ के सब ही पथिक

पिपासाकुल ही रहते हैं वर्मा जी की भी यही राय है देखिये :—

फाँदि दीठि-गुनि मन घटहिं, रूप-कूप में डारि।
को न पियत जगमग चलत, सुखमा सलिल निकारि।३।
कस न रिपटि नैना गिरैं, सुखमा सर मझधार।
अंगराग अंगन चढ़्यो, जनु सोपान सिवार ॥३५॥
रवि शशि तें कहुँ सौगुनी, मुख पै सुखमा स्वच्छ।
मुख लखि विकसत हिय नयन, कमल कुमुद तें अच्छ ॥३६॥

नेत्रों का वर्णन करते हुए कवि ने प्राचीन कवियों की कविता से टक्कर लेने का सफल प्रयत्न किया है इस प्रकार के कुछ दोहे यहाँ लिखे जा रहे हैं :—

लरिकाई के धूसरित, स्वच्छ करन ये नैन ;
नेह-नदी सिल उरज पै, पटकि पछारे मैन ॥४४॥

इसे पढ़कर कविवर बिहारी के निम्नलिखित दोहे की सहसा याद आ जाती है :—

मानहु विधि तनु अच्छ छबि, स्वच्छ राखवे काज ;
दृग-पग पौंछन कौं करे, भूषण पायंदाज।

खरे पानी की दुधारी छुरी यदि किसी गँवारिन के हाथ में दे दी जावे तो उससे हानि के अतिरिक्त और आशा ही क्या की जा सकती है। अथवा स्नेह के पानी से बुझाई हुई चितवन की दुधारी छुरी गवाँरिन के हाथ में दे दी गई। अतः कवि विधाता की इस भूल की आलोचना करता हुआ कहता है कि न जाने कितने खून

इस गँवारिन की दुधारी छुरी (आँखों) से हो जाना है यथा :-

छुरी दुधारी दीठि यहि, बुझी नेह के पाथ।
कितौ निर्दयी है दई, दई बानरिन हाथ ॥४८॥

महाकवि मुबारक ने नायिका को इसी लिये सचेत कर दिया कि कहीं अँगुली से काजल देते समय कटाक्षों से अँगुली न कट जाय इससे सींक से काजल दिया करे यथा:—

कान्ह की बांकी चितौन चुभी,
झुकि कालिह ही झाँकी है ग्वालि गवाछनि।
देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि,
ओछे फिरै उभरै चित जाछनि ॥
मार्‌यो सँभार हिये में मुबारक,
ये सहजै कजरा रे मृगाछनि ॥
सींक लै काजर देरी गँवारिन,
आँगुरी तेरी कटैगी कटाछनि ॥

दुलारे दोहावली के प्रणेता नेत्रों के इस काजल को परकोटा बनाकर कहते हैं :-

नजर तीर तैं नैनपुर, रच्छित राखन हेत।
जनु काजर प्राचीर पिय, तिय तनु-भू-पति देत ॥
"दु० दो०"

दिव्य दोहावली के शहर पनाह या परकोटा का मुलाहज़ा फरमाइये :—

आबादी अँखियान की, ज्यों कानन निगचाइ।
कजरा-सहर-पनाह नित, नयो बनायो जाइ ॥१४४॥

इतना ही नहीं कवि कहता है कि नैन नगर कानों की ओर (बन की ओर) क्यों न बढ़ें जब कि; वर्मा जी ही के शब्दों में देखिये :—

क्यों नहिं कानन लौं बढ़ैं, नैन नगर दिन रैन।
नट नागर जिनमें बसैं, राज करैं नृप मैन ॥१४५॥

दिव्य दोहावली के इस दोहे को कि :—

"नित प्रति पावस ही रहत, बरसत आठौ याम।
ये नैना घनश्याम बिनु, आप भये घनश्याम ॥१७०॥

पढ़ते ही भक्तवर सूरदास जी के विख्यात इस पद की याद आ जाती है :-

निस दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत बरसा रितु हम पै
जब तें श्याम सिधारे॥

कितना सजीव चित्रण है। प्रियतम के विरह में 'ये नैना घनश्याम बिनु, आप भये घनश्याम' मेघों की भाँति झड़ी लगाने वाले नेत्र स्वयम् घनश्याम हो रहे हैं उन्हें धन्य है अन्यथा

"जो चश्म कि बेनम हो वो तो कोर हो बेहतर" भला कहीं बिरहिणियों की वियोगाग्नि दो चार बूँद आँसू गिराने से कभी कम हुई है वह तो :-

मुत्तसिल रोते ही रहें तो बुझे आतिश दिल की।
एक दो आँसू तो और आग लगा देते हैं॥

इसलिये नित प्रति पावस ही रहत बरसत आठौ याम" उनका तो यही स्पष्ट कहना है कि :—

कितनौ बरसौ जलद जल, भरौ सरित सर कूप।
ये नैना भरहैं नहीं, बिनु देखे तद्रूप ॥१३०॥

हे घनश्याम! जब तक तुम्हारे ही समान रूप वाले घनश्याम को ये नेत्र न देख लेंगे तब तक भरेंगे नहीं, प्रसन्न नहीं होंगे। इत्यादि और कितने ही सुन्दर भाव पूर्ण दोहे नेत्रों के सम्बन्ध के हैं किन्तु उन सब की व्याख्या करना यहाँ अनावश्यक ही सा है। निम्न-लिखित दोहे मुझे कुछ अधिक पसन्द आये :—

इन विशाल अँखियान कौं, जलधहु कहैं न तोष।
काह न बाँधे मथैं ये, काहि न लेवें शोष॥
दोऊ अँखियाँ हिय लगीं, लिपट रहीं बे पीर।
उँगरी भई बजाज की, रही चीर सौं चीर॥
मन हू दिये न मन मिलत, है मन इतौ अमोल।
बिना मोल के लेत पै, जिनके लोचन लोल॥
श्रुत सेवत हू नहिं भये, नेक निरामिष नैन।
पियत रकत जिहिं हिय लगत, रक्त रहत दिन रैन॥
बातन बनि पिय हितु हिये, सैनन सैंदहिं देत।
देखत पी चित लै चले, ह्वै ठग चोर ठकैत॥
नयनन कौं नीरज कहत, साँचहु होत सँकोच।
पिय बिनु होत न सम्पुटित, रहत खुले हू पोच॥
नयन-नीर-निध की कछू, उलटी चाल लखाइ।
मुख-शशि देखे घटत जल, बिनु देखे उमड़ाइ॥
५५, ७८, १४६, २४८, ६६, १८६, ६

संसार में प्रेम की बड़ी ही महत्ता है। कोई "प्रेम का पंथ निराला ऊधौ" कहते हैं तो कोई कहते हैं कि

"प्रेम पयोनिधि में फँसि कै हँसि कैं कढ़वौ हँसि खेल नहीं कछु"। भक्त प्रवर सूरदास जी की सूक्ति है कि :—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सौं आपैं प्रान दह्यो॥
अलि सुत प्रीति करी जल सुत सौं सम्पुट सर्व गह्यो
सारङ्ग प्रीति करी जु नाद सौं सन्मुख बान सह्यो॥
हमहू प्रीति करी माधव सौं चलत न कछू कह्यो।
सूरदास प्रभु बिनु दुख दूनौ नैननि नीर बह्यो॥

कबीर साहब का भी यही मत है :—

समुझि सोच पग धरौ जतन से बारबार डिग जाय
ऊँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय॥

कविवर रहीम ने तो डंके की चोट से कहा है :—

रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबौ पावक माँहिं।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाँहिं॥

सहृदय रसनिधि जी की घोषणा है कि :—

अद्भुत गति यह प्रेम की, वैनन कही न जाय।
दरस भूख लागै दृगन, भूखहि देत भगाय॥
प्रेम नगर में दृग बया, नोखे प्रकटे आइ।
दो मन को कर एक मन, भाव देत ठहराइ॥
न्यारौ पैंड़ो प्रेम कौ, सहसा धरौ न पाँव।
सिर के पैंड़े भाव तैं, चलत बनैं तो जाव॥

तात्पर्य यह है कि "ढाई अक्षर प्रेम को पढ़ै सो पंडित होइ" प्रेम का रहस्य समझने के लिके यथेष्ठ समय और साधना अपेक्षित है।

या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोइ।
ज्यों ज्यों डूबे श्याम रँग, त्यों त्यों उज्वल होइ॥

दिव्य दोहावली के प्रेम की प्रथा भी कम ठाट की नहीं है। आप फ़र्माते हैं कि मन जो फूल के समान है डूब जाता है और मन के समान वज़नदार शरीर उतराता है। यथा :—

प्रेम पयोनिधि की प्रथा, कुल विपरीत लखाइ।
तिरत सुमन सौ मन सदा, मन सौ तनु उतराइ॥
अपने अनुभव तें कहौं, जन लगाव कोउ नेह।
सौ रोगन कौ रोग यह, सौ औगुन को गेह॥
अरे बटोही प्रेम मग, सम्हरि धारिये पाँय।
समथल समुझि न भूलिये, पग पग कपट कुराँय॥
नेह नहीं उगलत असित, योवन-अहि अहि-फैन।
जिहिं उर पै छीटहु परैं, करे ताहि बेचैन॥
नेह न छूटे वरु जरै, निर्जीवन ह्वै गात।
जीवन-धन घनश्याम लौं, धुवाँ अवश उड़जात॥

१२६, १३९, १५५, १३८, १४०

दोष

दोष देखने वाले संसार की प्रत्येक वस्तु में दोष निकाल लेते हैं फिर कविता का तो कहना ही क्या है जिसके लिये लोकोक्ति है कि :— "ऐसा कवित न जगत में जामैं दूषन नाहिं" फिर इस दोहावली को यह कैसे कहा जा सकता है कि यह दोष रहित ही है सम्भव है इसमें भी दोष हों। किन्तु

"संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि बारि विकार"

अन्तिम अभिलाषा

दिव्य दोहावली के प्रणेता श्री वर्मा जी कवि-प्रसविनी बुन्देल भूमि के अन्तर्गत अजयगढ़ राज्य के निवासी हैं। आप कुशल कवि, सफल चित्रकार और सहृदय साहित्यिक हैं काव्य एवम् चित्रकला जैसी ललित कलाओं को जिसने प्रकृति ही से प्राप्त किया हो, जो निरन्तर अध्यवसाय से उनकी उत्तरोत्तर उन्नति के लिये प्रयत्नशील हो वह सचमुच ही धन्य है। बुन्देलखन्ड की साहित्यिक जागृति में वर्मा जी का यथेष्ट भाग है श्री वीरेन्द्र-केशव-साहित्य परिषद् के अन्वेषण मंत्री के पद पर रहकर जिस लगन से आपने साहित्य सेवा में योग दिया है, दोनों ही भाषाओं की कविताओं द्वारा जिस प्रकार आप निरन्तर भाषा भारती का भंडार भर रहे हैं वह सचमुच ही प्रशंसनीय है। आप से बहुत कुछ आशायें हैं आपकी प्रतिभा उत्तरोत्तर उन्नति ही करती जावे ऐसी आन्तरिक अभिलाषा है।

केशव-लीला-भूमि
टीकमगढ़
श्री तुलसी जयन्ती
सं० १९९३
२५-७-१९३६

गौरीशङ्कर द्विवेदी
"शङ्कर"
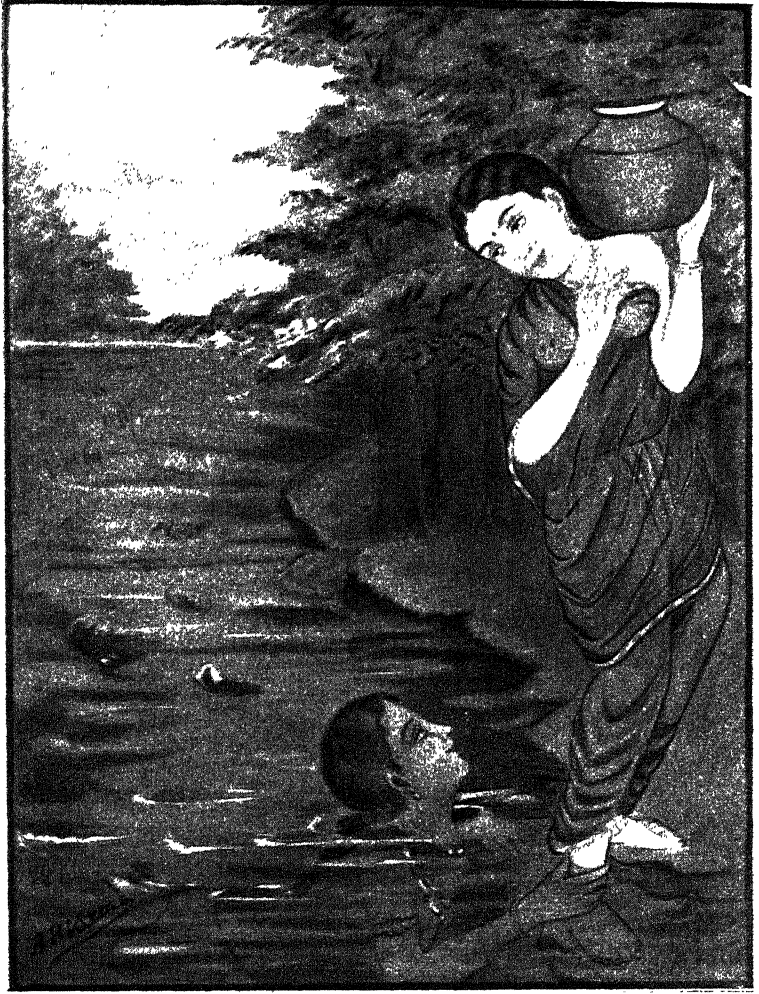
(चित्रकार :— कवि स्वयम्)

गज तो सुमरचो हरि तुम्हैं, हम सुमरैं कहु काह ।
हम गज गामिनि हेतु हरि, तुमहु बनत जब ग्राह ।।

दिव्य-दोहावली

प्रथम शतक

(१)

एक - रदन कुंजर - वदन ,
लम्बोदर लघु - नैन ।
सिद्धि लही जग सुमरि तुहिं,
कस पाऊँ गौ मैं न ॥

एक-रदन=एक दन्त वाले । कुंजर-बदन=हाथी के सदृश मुख वाले । लघु-नैन=छोटे नेत्र वाले ।

(२)

गज तौ सुमर्‍यो हरि तुम्हें ,
हम सुमरें कहु काह ।
हम गज-गामिनि हेतु हरि ,
तुमहुं बनत जब ग्राह ॥

गज-गामिनि=हाथी के सदृश चालवाली । ग्राह=मगर ।

(३)

फाँदि दीठि-गुनि मन-घटहिं ,
रूप - कूप में डारि ।
को न पियत जग-मग चलत ,
सुखमा-सलिल निकारि ॥

फांदि = बाँधकर । दीठि-गुनि = दृष्टिरूपी रस्सी से । मन-घटहि = मनरूपी घड़ेको । रूप-कूप = रूप-रूपी कुए में । जग-मग = संसार की रास्ता । सुखमा-सलिल = सौन्दर्य रूपी जल ।

(४)

जनि मुख देखैं मुकुर में ,
परिहै उलटि उदोत ।
कहाँ समाये गौ रुके ,
छवि-सरिता कौ सोत ॥

मुकुर = आयना । उदोत = प्रकाश । छवि-सरिता = सौंदर्य रूपी नदी । सोत = झरना प्रवाह ।

(५)

कह्यो जात नहिं रहत है ,
रुई लपेटी आग ।
लखौ फारि घूँघट, लगत ,
कस नहिं हिये दवाग ॥

दवाग = दावाग्नि

(६)

दरस्यो यौवन अरुन अब ,
हरष्यो मुख - जल - जात ।
अतनु-तरनि लै किरन-धनु ,
ज्यौं चहत यहि गात ॥

यौवन-अरुन = यौवन रूपी लालिमा । मुख-जलजात = मुखरूपी कमल । अतनु-तरनि = काम देव रूपी सूर्य । किरन - धनु = किरणों का धनुष ।

(७)

जोर न गुड़ियाँ पुतरियाँ ,
एक न रैहैं मान ।
मन-मन्दिरि यौवन-यवन ,
जबै धमकिहैं आन ॥

मन-मन्दिर = मन रूपी मन्दिर में ।
यौवन-यवन = यौवन रूपी मुसलमान ।

(८)

कौन सिया की खोज में ,
फिरत विकल दिन रैन ।
राम लखन से धनुष लै ,
कानन - सेवी नैन ॥

कानन-सेवी = बनवासी तथा कानोंतक जानेवाले ।

(९)

नयन-नीर-निधि की कछू,
उलटी चाल लखाय।
मुख-शशि देखे घटत जल,
विनु देखे उमड़ाय॥

नयन-नीर-निधि = नेत्र रूपी समुद्र।
मुख-शशि = मुख रूपी चन्द्रमा।

(१०)

रमनी - रमना में रमत,
मन - मृगराज विशेष।
जब मन मैन - महीप के,
आवत, करत निशेष॥

रमनी-रमना = स्त्री रूपी वह जंगल जिसमें कि राजा लोग शिकार खेलते हैं। मन मृगराज = मन रूपी सिंह। मैन-महीप = कामदेव रूपी राजा। निशेष = आहत

(११)

है यह विधना की दई,
आदि सृष्टि की टीप।
जहँ लौं यौवन-नगर है,
तहँ लौं मयन - महीप॥

यौवन-नगर = यौवन रूपी देश। मयन-महीप = कामदेव रूपी राजा।

(१२)

देख विरहनी की विथा,
वरनत कछू बनै न।
जाहि न कबहूं विरह भौ,
भलौ कहे विरहै न॥

भलौ = अच्छा।

(१३)

लखि विरहिन के प्रान सखि,
मीचहुँ नाहिं दिखात।
फिर फिर आवत लेन पै,
मुयौ समुझि फिर जात॥

मीचहुं = मृत्यु को भी। मुयौ = मरी हुई ही। फिरजात = वापिस चली जाती है।

(१४)

करत कहा विरहाग की,
अकस गरीब दवाग।
तूँ जारत उकठे तरुन,
उठे तरुन विरहाग॥

अकस-ईर्षा। दवाग = जंगल की अग्नि। उकठे = सूखे हुए। तरुन = वृक्षों को। उठे तरुन = उठे हुए युवकों को।

(१५)

का कहिये इन दृगन कौं,
कै चन्दा कै भानु ।
सौंहैं ये शीतल लगैं,
पीछे हौंय कृशानु ॥

कृशानु = अग्नि ।

(१६)

यौवन फल कै फूल तुहिं,
कहिये कहा बताय ।
चलो जाय जिन तरुन तें,
उनकौं जाय नवाय ॥

नवाय = झुकाकर

(१७)

यौवन - औरँगजेब ज्यों,
वपु - भारत कौ ताज ।
लेत, देत त्यों चोप चढ़ि,
शंवरारि - शिव - राज ॥

यौवन-औरंगजेब = यौवन रूपी औरंगजेब बादशाह । वपु-भारत = शरीर रूपी भारत-वर्ष । शंवरारि-शिवराज = कामदेव रूपी शिवाजी ।

(१८)

आग जुदाई की सकैं—
कैसे आँसु बुझाय ।
टूटत दोहू दृगन तें,
जुदे जुदे जब जाइ ॥

जुदे जुदे = जब खुदही जुदाई से पीड़ित हैं ।

(१९)

करै रूप पिय के अमित,
है न देव अस कोय ।
बुरी विरह की पीर है,
सौतन हू जनि होइ ॥

अमित = बहुत से ।

(२०)

कली तोहि किहिं गली को,
करि है यह जड़ प्यार ।
पाती पै पाती पठै,
आवत जो ससुरार ॥

पाती = पत्ते तथा चिट्ठी । ससुरार = प्रीतम के घर, भौंरे के पास ।

(२१)

उतर न घूँघट रन्ध्र में,
चढ़िवौ कठिन महान।
तिय यह तेरे हित रच्यो,
रे मन मूसादान ॥

घूँघट-रन्ध्र = घूँघट के छेद में। मूसादान = चूहे पकड़ने का कटहरा।

(२२)

तिय फूँकत वे काज कत,
चल हट चूल्हो त्याग।
तेरे सौंहैं होत नहिं,
लगत काहु कौं आग ॥

सोंहैं = सन्मुख, सामने।

(२३)

जाके आयुध कुसुम के,
को दयालु सम ताहि।
शंकर सौ को निर्दयी,
भसम कियो जिन वाहि ॥

आयुध = हथयार। कुसुम के = फूलों के।
जाके ....कुसुम के = कामदेव।

(२४)

कौन रसाइन है सिखी,
अरसाइन यहि दीठि।
बरसत चाँदी सौन सौ,
जहँ चितवत यहि नीठि॥

रसाइन = रसाइन शास्त्र। अरसाइन = अलसानी तथा रसाइन को न जाननेवाली। दीठि = दृष्टि। नीठि = थोड़ा भी।

(२५)

पग पग जग-दृग, दीठि अरु,
मग में अटकत आइ।
डग डग कहँ लौं नदी सी,
नरि नकत ही जाइ॥

जग दृग = संसार के नेत्र। नदी में पानी और पत्थर होते हैं यहाँ स्त्री के रास्ते में दृष्टि और नेत्र हैं।

(२६)

आह भरत दिन, यामिनी,
रोवत अँसुवन ढारि।
सन्ध्या एकहि घरी की,
विरहै एक अपार॥

यानिनी = रात्रि। अँसुवा ढारि = आंसुओं को बहाकर, अँसुओं का तात्पर्य यहां तारों से है। संध्या = सायंकाल तथा संयोग।

(२७)

भजे नहीं भूँज्यो हियौ,
　　डारे दृगहु उलीचु।
तनु ते तुम्हें निकारि वे,
　　हरि बुलाँव अब मीचु॥

मीचु = मृत्यु को

(२८)

नेह नदी में सुमन सौ,
　　बिखरि जात यह गात।
मन बूड़त, दृग बहत, जिय,
　　छिन छिन गोता खात॥

गात = शरीर

(२९)

हरि से आहौ हिये कै,
　　हिय से ह्वौ वो ठानि।
का बनाव यहि हिये हरि,
　　साँचौ कै शुचि म्यान॥

(३०)

बिन्दी लाल लिलार पै,
दई बाल यहि हेत।
समझैं आवत दृग पथिक,
खतरा कौ संकेत॥

(३१)

कत दिन-कर, दधि सुत, दियौ,
दई दियौ अवदात।
होत उजेरो हिये में,
मुख हू के प्रभात॥

दिनकर = सूर्य। दधिसुत = चन्द्रमा।
दियौ = दीपक।

(३२)

तिय मो मानस-कूप में,
गिरयो कछ्छ तब है न।
कांटे सी भ्रू डारि कै,
कहा विलोवै नैन॥

मानस-कूप = हृदय रूपी कुये में कांटे = वह कांटा जिससे कूएँ में गिरे हुए बर्तन निकाले जाते हैं।

(३३)

आधी अँखियन देखि तिय,
आधौ करै न काहि।
कैसे सो पूरन बचै,
निरखै पूरिन जाहि॥

पूरिन = पूरी आंखों से

(३४)

पहिलै चख तिरछे चलत,
फिर कहु सीधी चाल।
बिन्यो न जात सनेह को,
सीधी बिधि सौं शाल॥

शाल = दुशाला

(३५)

कस न रिपटि नैना गिरैं,
सुखमा-सर मझधार।
अंग राग अंगन चढ़्यो,
जनु सोपान - सिवार॥

सुखमा-सर = सौन्दर्य का तालाब। अङ्गराग = चन्दन इत्यादि लेप ? सोपान-सिवार = सीढ़िओं की काई।

(३६)

रवि शशि ते कहुं सौ गुनी,
मुख पै सुखमा स्वच्छ।
मुख लखि विकसत हिय नयन,
कमल कुमुद तें अच्छ॥

सुखमा = सौन्दर्य
अच्छ = श्रेष्ठ

(३७)

तबै जुरत जोरी जवै,
जात पांत इक होइ।
परभृत श्याम कहावहीं,
राधा श्यामा सोइ॥

परभृत = कोयल
श्यामा = कोयल

(३८)

को जीतत हारत कहो,
लोयन की सखि रार।
जो डारत धारत कि जो,
अपने उर में हार॥

हार = माला तथा पराजय

(३९)

कीन्हो होत न जो अतनु,
हर तोकौं करि छार।
विरह जरत तिय हिये तो,
कैसे वसतो मार॥

मार = कामदेव

(४०)

चितै चितै इत उत, चितै,
देत उतै उहिं ओर।
उहि चितवत चित नचत जनु,
लखि निर्जन-बन मोर॥

चितै = देखकर, चितै = चित्त को

(४१)

मुख चितवत गिर गिर परत,
चख पद नख की ओर।
गिरत उत्यो जेत्यो चढ़त,
मानहु रज-गिरि जोरि॥

रज-गिरि = बालू का पहाड़

(४२)

रलीं करत नव तरुन तें,
हरत सुमन वर वीरि।
नचत कि वारविलासिनी,
चलत कि त्रिविध समीर॥

तरुनते = वृक्षोंसे तथा युवकों से। सुमन = फूल, तथा अच्छा मन वार-विलासिनी = वेश्या।

(४३)

रूप कूप में सुमुखि के,
मन घट देखि अरै न।
फेर न रीतत भरे ते,
रीते बिनु निक सैन॥

अरै, न = मत डार

(४४)

लरिकाई के धूसरित,
स्वच्छ करन ये नैन।
नेह-नदी-सिल उरज पै,
पटकि पछारै मैन॥

धूसरित = धूल से भरे हुये नेह-नदी-सिल-उरजपै = नेह नदी के उरज रूपी पत्थरों पर। मैन = कामदेव

(४५)

को अँखियारो सकत है,
हरि सौं आँख लगाय।
सपने हू मे लखि उहैं,
लगी आँख खुल जाय॥

अँखियारो = आंखों वाला

(४६)

किहि पहिनावत है अरी,
गुहि अँसुअन को हार।
पिय नहि बैठ्यो, है हिये,
बानर बिरह अनार॥

अनार = अनाड़ी

(४७)

परत जु आ मुठभेर मे,
भँजत सु भाज सकै न।
चलत भँजावत वैर से,
भाँजत असि से नैन॥

मुठभेर = सामने
असि = तलवार

(४८)

छुरी दुधारी दीठि यहि,
बुझी नेह के पाथ।
कितो निर्दयी है दई,
वना दईरिन हाथ ॥

पाथ = पानी ।
वानरिन = नवोढ़ा स्त्री ।

(४९)

घरी घरी जो अधजरी,
उठत कराहि कराहि।
है कै कारी कुहिलिया,
कै यहि हिय की आह ॥

(५०)

वचि मेरे दृग-सरन तें,
छिपे मो हिये आइ।
कहँ छिपहौं हरि छिनक में,
दैहौं हियौ जराइ ॥

(५१)

गिरि से ऊँचे निरखि कैं,
उर पै उठे उरोज।
गिरिधर आये तौ नहीं,
तिय निरखत हिय रोज॥

(५२)

कहियत उकठे तरुन कोउ,
नेकु न सकत नवाइ।
काहि न धनुष वनाइ पै,
दिन दिन यौवन जाइ॥

(५३)

छतियन कौं विनु हू छुये,
लगतीं लखि हू दूर।
अनियारीं अँखियाँ भईं,
मखियन तक सौं क्रूर॥

मखियन = मधु मक्खियों से।

(चित्रकार :— कवि स्वयम्)

गिरि से ऊँचे निरखि कैं, उर पै उठे उरोज ।
गिरिधर आये तो नहीं, तिय निरखत हिय रोज ।।

(५४)

ये दृग देखें दसहुं दिसि,
छिपौ कहाँ नँदराय।
छिपनौ है यदि दृगन सौं,
छिपौ दृगन में आइ॥

(५५)

इन विशाल अँखियान कौं,
जलधहुं कहैं न तोष।
काहि न बाँधे मँथे ये,
काहि न लेवे शोष॥

समुद्र बाँधा मथा तथा सोखा गया था = आंखे सब को बांध मथ और सोख लेती हैं।

(५६)

गहन परे हम करति हैं,
जप तप पूजा दान।
विरह परे हम शशि-मुखिनि,
शशि कत होत कृसानु॥

कृसानु = आगी।

(५७)

यहि तनु बैठ्यो विरह-चिक,
वैंचत माँस तरासि ।
मिलन-आस दै, जात लै,
आमिष-प्रिय प्रति स्वाँस ॥

विरह-चिक = विरह रूपी चिकवा (माँस का बेचने वाला । तरासि = काट कर ।
आमिष-प्रिय = मांस पसन्द करने वाली

(५८)

हारी पपिहौ सौं रटत,
पिउ पिउ आठौ याम ।
घर आये घनश्याम नहिं,
घिर आये घन - श्याम ॥

(५९)

कर्‌यो कहा हम बाल कस,
रोवत मीरत नैन ।
लखौं जु हरि नैनन बसो,
कसिके कै कसि कै न ॥

(६०)

नाम बड़ो अति लघु दरस,
गिरधारी गोपाल।
उठत न ना कछु नैन ये,
कस मो सौंहैं लाल।

(६१)

ऐसी कहूँ न प्रतीक्षा,
देखी हम सुकुमार।
सूख रही है द्वार पै,
खुद ह्वै वन्दन - वार॥

(६२)

भीतर हौ कै बाहरै,
कहुं कछु समझ परै न।
दिखा परत हर एक से,
मूंद्यौ खोल्यौ नैन॥

(६३)

रे मन वाके मुख - सदन,
बोले हू प्रवसैन ।
बाँधत वेधत वधत जँह,
वैनी वरुनी वैन ॥

मुख-सदन = मुख रूपी घर ।

(६४)

ज्यों ज्यों यौवन-अहि हिये,
गहिरैं प्रविसत रोज ।
वामी लौं ऊँचे उठे,
त्यों त्यों उभरि उरोज ॥

यौवन अहि = यौवन रूपी सर्प । वामी = सर्प के रहने का खेल ।

(६५)

उठे उरोजन तें फिसलि,
सारी गिरि गिरि जात ।
मनहुं सिलन तें सरित में,
लोल लहर टकरात ॥

सिलन तें = चट्टानों से ।
लोल = चचल ।

(६६)

जित अटकै चटकै न तिति,
चटकै पुन अटकै न।
खेली हरि अब खेलि हौं,
अटकन चटकन मैं न॥

अटकै = प्रेम लग जाय। चटकै = टूटै।
अटकन-चटकन = एक खेल जो बहुधा
लड़कियाँ खेला करती हैं।

(६७)

कहाँ पियत डारत कहाँ,
घट सौं जीवन - धार।
प्यास लगी हरि है तुम्हें,
सींचत हियौ हमार॥

(६८)

जब लौं उरझे नैन नहिं,
कबहूँ मन सुरझै न।
या वा में धावत फिरे,
कतहुं न पावै चैन॥

(६९)

अँखियन-मखियन को न डर,
रहैं कामरी धारि।
कस नहिं छतियन कौं छुएँ,
मधु हित निडर मुरारि॥

अँखियन-मखियन = नेत्ररूप मधु मक्खी।

(७०)

कही उड़ौ, ज्यों, आज जो,
आवत हैं नद-लाल।
कागा उड़िवे कौं करी,
पँख सी फूली बाल॥

पँख सी = पँखों के सदृश।

(७१)

आयो सावन मास, करि,
झूला चढ़े गुमान।
पूरन हरि राधा लगे,
मिचकिन अरध मदान॥

पूरन......लगे = श्री कृष्ण और राधिका जी झूल कर पूरा करने लगे।
मिचकिन = मिचकारियों से। अरध मदान = आधे इन्द्र धनुष को।

(७२)

जब तें आप भयो जरि,
हर सौं लरि बिन देह।
सुधि-बुधि हरि हिय धसि अनग,
काहि न करत विदेह॥

(७३)

गोपी गोफन में फँसे,
यों सोहत गोपाल।
परी मीन ज्यों नेह-जल,
मीन केतु के जाल॥

गोफन में = भुजपाशों में। नेह-जल = प्रेम रूपी जल में। मीन-केतु = कामदेव।

(७४)

घाली विरहा-बाघ की,
को छुवे सखि तोय।
मीचहुं फिर फिर जात लखि,
सभय स्यार सी होय॥

घाली = घायल की हुई। विरहा-बाघकी = विरह रूपी सिंह की। स्यार = शृगाल। सिंह के किये हुये गायरे को कोई दूसरा जानवर नहीं छूता।

(७५)

खुलत मिलत पल पल पलक,
फुँकरत नासा - भाग।
धुकनी ये अँखियाँ भईं,
धौंके मन विरहाग ॥

फुंकरत...भाग = नाक से फुँसकार निकलती है।

(७६)

लगा गये हौ हरि भलौ,
वातन कौ इत वाग।
सब दिन बीतत उअत तें।
हमें उड़ावत काग ॥

(७७)

दाहत है विरहीन कों,
सुलगि सुलगि सब गात।
शशि न अरे अंगार यहु,
किन चकोर उड़ि खात ॥

(७८)

दोऊ अँखियाँ हिय लगीं,
लिपट रहीं वे पीर।
उँगरीं भईं बजाज की,
रहीं चीर सौं चीर॥

उँगरीं = उँगलीं। बजाज = कपड़ा बेचने-वाला। चीर = कपड़ा। चीर = फाड़।

(७९)

बाँटो बटै न दुख सखी,
यहू कहत सब कोइ।
हौं मरहौं तो पियहिं का,
विरह न दूनो होइ॥

(८०)

दीप-सिखा सी नारि कै
है कछु बड़ी बलाय।
उर लाये शीतल लगै,
बिलगाये झुलसाय॥

बिलगाये = अलग करने से। झुलसाय = जलाती है।

(८१)

लौ-पल्लव, अँगरा-सुमन ,
भस्मी जासु पराग ।
सूख्यो तरु कों करत है ,
तरुन पुनः लगि आग ॥

लौ.....सुमन = ज्वाला ही जिसके पत्ते हैं और अँगारे ही जिसके फूल हैं । भस्मी.... पराग = राख ही जिसका पराग है ।

(८२)

किन उपदेस्यो इन दृगन ,
गरु गीता को ज्ञान ।
जकत न जान अजान पै ,
चालत चितवन - वान ॥

(८३)

सदा दिवारी ह्वै रहत ,
श्री न जात कहुँ छोड़ि ।
तनु-द्युति लहि जँह दीप सौं ,
राखत भूषण होड़ ॥

तनु-द्युति = शरीर की कान्ति ।

(८४)

ज्यों रवि आभा जान्हवी,
दिखरावत निज ओज।
शिव की करत विडम्बना,
सर तें उठत सरोज ॥

(८५)

तिरछी सीधी चाल चलि,
ज्यों गज उष्ट्र तुरङ्ग।
देन मात हिय - शाह कों,
खेलत दृग सतरङ्ग ॥

उष्ट्र = ऊँट। तुरँग = घोड़ा। हिय-शाह = हृदय रूपी बादशाह को।

(८६)

इन अयान अँखियान कौ,
कहा बिसाह्यो वैर।
अस वस जिन वसनिज किये,
गैर, किये निज गैर ॥

अयान = मूर्ख। अस-वस = लाचार हो कर। जिन वस = जिनके वसीभूत होकर। गैर = पराये।

(८७)

भये अनोखे वैद ये,
नये नौ - सिखा नैन ।
सब रोगन पै एक रस,
सीख्यो गोरस दैन ॥

(८८)

कपट - कालिमा नेह में,
लगै न पिय अब रेख ।
धारिय चस्मा चखम पै,
तजिय मुकुर मुख देखि ॥

कपट-कालिमा = कपट की स्याही । मुकुर = आइना ।

(८९)

देहु हमारे हरि भले,
चोली चीर उतार ।
हम नहिं जानिति तरुन पै,
चढ़िबौ नन्द कुमार ॥

(६०)

जो मधु चाहत मछौं लौं,
दौर जात गुनवान।
रलीं करन की कलिन सौं,
परी अलिन कछु बान॥

(६१)

तवै कही सिर लौं नहीं,
गागर दई उठाइ।
गिरधर उर धरि तोहि कौं,
तोसों चली लिवाइ॥

(६२)

चहै जु करव्यो खुदकुसी,
तिहिं कोउ वरजि सकै न।
वाके रूप समुद्र में,
देखत वूड़े नैन॥

खुद-कुसी = आत्म घात।

(९३)

कहत हँसी करि शशि-मुखी ,
दुखी करत कस मोइ ।
तुम्हें देखि हरि ह्वै सुखी ,
को हँसमुखी न होइ ।

हँसमुखी = सूर्यमुखी, प्रसन्न वदना ।

(९४)

शैशव अस्व बनाइ तुहिं ,
यौवन मत्त मतङ्ग ।
बना ऊँट बैठत जरा ,
नर तेरो क्या रङ्ग ॥

अस्व = घोड़ा । मतङ्ग = हाथी । जरा = बुढ़ापा ।

(९५)

नेह लतन की जतन सौं ,
हृदय - निकुजंनि गोइ ।
राखौ बतियाँ मिलन की ,
जनि उंगरावे कोइ ॥

नेह-लतन की = नेह रूपी लताओं की । जतन सौं = उपाय से । हृदय-निकुञ्जनि = हृदय रूपी कुञ्जों में । बतियां = बातें तथा-फल ।

(९६)

वातन वनि पिय हितु हिये,
सैनन सेंदहिं देत।
देखत ही चित ले चले,
ह्वै ठग चोर डकैत॥

सेंद = चोर लोग जो दीवालों में घुसने के लिये खंदक खोदते हैं।

(९७)

नेह मिटै नहिं वरु परै,
लगतन ही विश्लेष।
दीन हीन दीपक सिखहिं,
खोवे तम न अशेष॥

(९८)

ह्वै न अचल रहु, चित्त चलु,
चख - चख चौंधि वराइ।
छिप्यो मार उत मारि है।
सर तुहिं सौंहैं पाइ॥

चख-चख चौंधि = आँखों की चख चौंध को। वराइ = बचाकर। मार = कामदेव।

(९९)

कँह सखि मिलत मदान में,
भरे उजास उमङ्ग।
जीवन में मिलि नेह जस,
खरे खिलावत रङ्ग॥

मदान = इन्द्र धनुष। उजास = प्रकाश।
जीवन = पानी तथा जिन्दगी। नेह = प्रेम
तथा तेल।

(१००)

उलटी गति यह नेह की,
लगतन लगै न देर।
लगै लगाये हू नहीं,
मैटे मिटे न फेर॥

(१०१)

परकम्मा अँसुवान की,
अखियाँ देवें रोइ।
इनकों सदा अमावस,
सोमवती ही होइ॥

(१०२)

आज कली कल कुसुम खिलि,
परौं जाति मिल धूल।
अलि कासौं अनुराग करि,
रह्यो आपुकौं भूल॥

(१०३)

ह्वै बावन कै बालि-सुत,
कियो हिये पद - पात।
विरह उठावन कौं फिरत,
नेह नपावन गात॥

बावन = भगवान का अवतार विशेष।
बालिसुत = अङ्गद। गात = शरीर।

(१०४)

शशि तें मुख पै सौ गुनौ,
सुन्दर शरद विलास।
चख खंजन सेवें सदा,
छऊ ऋतु बारौं मास॥

(१०५)

बरजत तुम्हें बसन्त हम,
इन बागन जन आव।
आये शीत सिरात है,
गये लगत है लाव ॥

लाव = अग्नि।

(१०६)

धँसि आयो यौवन - यवन,
तनु मन्दिर कौं चीन्ह।
शैशव की गुड़ियाँ सबै,
तोरि मसजिदौ कीन्ह ॥

गुड़ियाँ = पुतरियाँ, मूर्तियाँ । यौवन-यवन = यौवन रूपी मुसलमान।

(१०७)

राख्यो रखवार्‌यो भल्यो,
आँख्यौ राखें मूँदि।
झाँख्यौ मुख, मारत अरी,
झख केत्यो यहि खूँदि।

आँख्यौ = आँखों को भी। झाँख्यौ = झाँकने से। झख केत्यो = कामदेव।

(१०८)

जब तें भयो अनङ्ग जरि,
मैन बढ़ी अरु चैन।
चिन्ता भोजन भजन की,
मिटी मिट्यो दिन रैन॥

(१०६)

किती न खाली घन-घटन,
मुख धो करौ मयंक॥
कित्यो न पौंछो बीजुरिन,
मिटै न लग्यो कलंक॥

घन-घटन = बादलों की घटाओं को तथा घड़ों को। मयंक = चन्द्रमा। बीजुरिन = बिजली से।

(११०)

सबै सिखावत दृगन सौं,
उलटौ वेद पुरान।
लिख्यो जौन पै दृगन में,
मानत जगत प्रमान॥

(१११)

परत चित्त पै प्रकृति कौ,
असर कहत सब कोइ ॥
तुहिं राख्यो निज मृदु हिये,
तऊ न तूँ मृदु होइ ॥

(११२)

विरह - मिलन-दिन-यामिनी,
नगुनि नेह - निशि - नाथ ।
घटत बढ़त प्रकटत दुरत,
रहत एक सम साथ ॥

विरह ....यामिनी = विरह मिलन रूपी रात और दिन को । न गुनि = न ख्याल कर के । नेह - निशिनाथ = प्रेम रूपी चन्द्रमा ।

(११३)

तिय दृग चढ़ि कजरा करै,
मन नहिं नेक गुमान ॥
धुलि गिरहै पग पै सुनत,
पिय परदेस पयान ॥
(विहारी के दोहे के आधार पर)

(११४)

बैठी वाकौं पीठि दै,
देखत दीठि मरोरि।
पीठि तरफ तें घुसत कै,
दीठि तरफ तें चोर॥

(११५)

यौवन उदधि अथाह में,
उपल - उरोज अपार।
दृग - जहाज टकरात नित,
डूबत मन - असवार॥

यौवन-उदधि = यौवन रूपी समुद्र में। उपल-उरोज = उरोज रूपी पत्थर। दृग-जहाज = नेत्र रूपी जहाज। मन-असवार = मन रूपी सवार।

(११६)

परस न पिय जलजात सौं,
चलि औचक तिय गात।
सहजहुं अबै झुरात फिर,
करै सीत उतपात॥

जलजात सौं = कमल के समान। झुरात = सूखता है। गरम हवा से एक बारगी ठंडी में आने से हानि होती है।

(११७)

देखत मुख न दिखावत,
रहत कौन की ठौर।
जबतें भे हरि और के,
तबतें भे हरि और॥

(११८)

दृगन गिरे हू आँसु लघु,
लागें गिरि से जाहि।
बड़ि बड़ि बुँदियन गगन तें,
घन मारत का ताहि॥

(११९)

दिखै भवन में भूत ह्वै,
पनघट पै ह्वै प्रेत।
जहाँ देखिये छीद ह्वै,
छैल दिखाई देत॥

छीद = एक प्रकार का प्रेत जो पथिकों का पीछा करता है।

(१२०)

लैचलिये वहिं पीठ पै,
जासौं अपनी पैठ।
जग में, अपने ईठ सौं,
नीठ न चहिये ऐंठ॥

ईठ = इष्ट, प्रिय। नीठ = थोड़ी।

(१२१)

तुम तौ राख्यो इन्द्र तें,
इन्द्रिन तें हरि कौन।
ये वरसाती तुम विना,
आग अँगार जलौन॥

इन्द्रिन तें = इन्द्रियों से। जलौन = जल ही नहीं।

(१२२)

भाजत परि वराय मन,
ह्वै ह्वै आज अधीर।
चलत बसन्त - समीर कै,
कुसुमायुध कौ तीर॥

(१२३)

का अचरज जो सुन्यो हम,
कुवुरी सुधरी सोइ।
जँह विरमैं घनस्याम तँह,
मरु तें मालव होइ॥

कुवुरी = कूवड़ी, तथा बुरी ज़मीन। सुधरी = अच्छी तथा अच्छी ज़मीन।

(१२४)

वाँधी वेनी - असित - अहि,
वाँधि असित पँखमोर।
वाँधिय काले कान्ह कौं,
कजरा दै दग - कोरि॥

बांधी ...मोर = वेनी रूपी काली नागिन को काले मोर पंख बाँध कर बाँधा।

(१२५)

एहो पिय जव तें लगी,
तुम्हैं सलोनी सौत।
तव तें नित लौनी लगी,
मोहि अलौनी मौत॥

(१२६)

प्रेम - पयोनिधि की पृथा ,
कुल विपरीत लखाइ ।
तिरत सुमन सौं मन सदा ,
मन सौं तनु उतराइ ॥

सुमन सौ = फूल के समान हलका ।
मन सौ = मन के समान वजनदार ।

(१२७)

बसे दृगन में दृग, हरी ,
मन हू मन में धाइ ।
देहु हियौ यहि हियहिं नहिं ,
दह्यो डाह सौं जाइ ॥

डाह = ईर्षा ।

(१२८)

सोहत विन्दी भाल पै ,
कालिन्दी मझधार ।
इन्दीवर पै चढ़ी जनु ,
इन्द्रवधू सुकुमार ॥

(१२९)

का मरियादा जलधि की,
लखि ससि होत अधीर।
सौ सौ मुख-ससि लखत हू,
बढ़त न कूप गँभीर॥

(१३०)

कितनौ बरसौ जलद जल,
भरौ सरित सर कूप।
ये नैना भरिहैं नहीं,
बिनु देखे तद्रूप॥

तद्रूप = तुम्हारे ही समान रूप वाले को (श्याम को)

(१३१)

रे मन वाके मुख - नगरि,
प्रवस्यौ कौन सुपास।
धँसत्यौ तौ चढ़ने परत,
दृग - नासा को क्रास॥

क्रास = फाँसी देने का यंत्र जो प्राचीन काल में काम में लाया जाता था।

(१३२)

चार भये चख का भयो,
जो न भये चौकोर।
दूरहि तें देखत रहौ,
जैसे ससिहिं चकोर॥

चौकोर = समकोण।

(१३३)

ए सखि जाइ कहै किन,
कहाँ रह्यो मो मान।
तजि आवै जो मन रुचै,
कान्ह गयो लै कान॥

(१३४)

जब लौं पिय सौंहैं खरे,
डारि गरे में बाहिं।
जगमय पिय तब लौं लखौं,
पिय मय जग जब नाहिं॥

(१३५)

लखि हरि कौं हू है तर्यो,
को भव - पारावार।
मैं तौ लखि बूड़त बहत,
अपने ही मझधार॥

(१३६)

कलित - अंक कलधौत की,
काहि चाहिये लंक।
है मयंक जो दीठि कौं,
पीठहु कौं पर्यंक॥

कलधौत की = स्वर्ण की । मयंक = चन्द्रमा
पयक = पलंग ।

(१३७)

तनु पै विरहिनि के चढ़्यो,
चन्दन चारु सुहाइ।
मनहु अँगारे पै चढ़ी,
भस्म भूरि छवि छाइ॥

(१३८)

नेह नहीं, उगलत असित,
यौवन - अहि अहि - फैन।
जिहिं उर पै छींटहु परै,
करै ताहि वे चैन॥

असित = काला। यौवन-अहि = यौवन सर्प
अहिफैन = जहर।

(१३९)

अपने अनुभव तें कहौं,
जनि लगाव कोउ नेह।
सौ रोगन कौ रोग यहि,
सौ औगुन कौ गेह॥

औगुन = अवगुणों।

(१४०)

नेह न छूटे वरु जरै,
निर्जीवन ह्वै गात॥
जीवन-धन घनश्याम लौं,
धुवाँ अवस उड़ि जात॥

(१४१)

पिय आवन की वाट में,
लटकी दिहरी द्वार।
अटकी रहत किवार सी,
झटकी सी सुकमारि॥

वाट में = रास्ते में तथा पतीक्षा में।

(१४२)

दो कौ दो तक ही पढ़ो,
चहिये दृगन पहार।
वढ़त तीन कौं होत है,
साँचहु छै ही सार॥

नेत्रों को दो से चार ही होना उचित है। चार से छै होते ही छैही परिणाम निकलता है।

(१४३)

लिखि लिखि जात शरीर पै,
करुन कथा निज काल।
दुख सुख हमैं जो होत है,
वहि कौ पढ़े सुहाल॥

(१४४)

आवादी अखियान की,
ज्यों कानन निगचाइ।
कजरा सहर - पनाह नित,
नयो वनायो जाइ॥

सहर-पनाह = चाहार दीवारी।

(१४५)

क्यों नहिं कानन लौं वढ़ैं,
नैन नगर दिन रैन।
नट - नागर जिनमें वसैं,
राज करैं नृप मैन॥

(१४६)

मन हू दिये न मन मिलत,
है मन इतौ अमोल।
विना मोल के लेत पै,
जिनके लोचन लोल॥

लोल = चंचल।

(१५०)

दूर भये जड़ जीव सब,
अति लघु रूप लखाँय।
दूर भये पै पीयु नित,
ईशहु तें वढ़ि जाँइ॥

(१५१)

गिरत टूट दृग ऊपरै,
चारहु दिसि तैं आइ।
कहँ लौं जगमग चलौं सखि,
ओरे सरिस वराइ॥

ओरे = ओले। वराइ = बचाकर।

(१५२)

मुख प्रसून दृग अलि जहाँ,
पल्लव पट लहराँइ।
कस अस लता - निकुञ्ज में,
पथिक - मनन विरमाँइ॥

मुख प्रसून = मुख ही पुष्प है जहाँ
विरमाँइ = विश्राम लें।

(१५३)

नेह - हाटि हाटक बिकै,
लैन - दैन दिन - रैन।
विधिना तौलन कों किये,
तारि तराजू - नैन॥

हाटि = बाजार में। हाटक = सोना।

(१५४)

अमिय लगत मदिरा रमत,
विष बिछुरित तिय नैन।
जीव भुगुत अरु मीचि हू,
विधि - हरि-हर ह्वै दैन॥

(१५५)

अरे बटोही प्रेम - मग,
सम्हर धारियो पाँइ।
सम-थल समुझि न भूलियो,
पग पग कपट - कुराँइ॥

कुराँइ = गड्ढा जो ऊपर से घास इत्यादि से ढक जाता है।

(१५६)

चलत ढाँकि मुख मगन कत ,
निरखत निर्दय नारि ।
पग पग पै अगजग दृगन ,
कुचरत जात हजार ॥

(१५७)

पिय सौं बाजी वदत ये ,
नेकु न प्रान सँकात ।
गात जरत पिय के गये ,
प्रानन गये सिरात ।

सिरात = ठंडा पड़ता है ।

(१५८)

को चाहत कोउ दूसरो ,
होवे आप समान ।
विधि हू देत न चार मुख ,
काहू कों यहि ठानि ॥

(१५९)

अपनी ही जो आह की,
आँच लगे कुम्हलात।
ताहि जरावे कत अनल,
वरसत झंझा वात॥

(१६०)

सौ सौ रवि ससि कछु नहीं,
दृगौ भरे नहिं जात।
एकहि मुख-ससि के उदय,
सून्यौ कहुं न दिखात॥

सून्यौ = खाली तथा आकाश भी।

(१६१)

ज्यों ज्यों वासो परहि कछु,
है यह सरह सिरात।
वासो ज्यों ज्यों परहि पै,
खासो विरहि ततात॥

सरह = नियम। सिरात = ठंडा पड़ता है।
ततात = गरम पड़ता है।

(१६२)

को न देखि वाकी सिवी,
सवै रिझावन - हार।
डुवो दृगन अनुराग रँग,
हिय पै लेत उतार॥

(१६३)

अरि हू विसरत वैर करि,
आपत परे समान।
मिलत लराके नैन, जव,
विरह सतावत आन॥

लराके = लड़ने वाले।

(१६४)

इत की उत, उत की इतै,
कहि कहि वात वनाइ।
चुगल चवाइन सैन यहि,
लोइन देत लड़ाइ॥

लोइन = आँखों को तथा आदमियों को।

(१६५)

जिह्वा सों लघु खाल की,
बात भालकी होइ।
कोऊ पावत पालकी,
लगी नाल की कोइ॥

लगी नाल की = जूती।

(१६६)

नहिं कपूत लौं तजत ये,
दृग हू तिरछी चाल।
उत्तर दच्छिन जाँइ कहुं,
लच्छन वही वहाल॥

उत्तर दच्छिन = दाहिनी व बाईं ओर।

(१६७)

चार होत चख मिलि जवै,
जीत लोक की लाज।
चारहु फल युत मिलत है,
चारहु दिशि कौ राज॥

चारहु फल = अर्थ धर्म काम मोक्ष।

(१६८)

भले ऊजरो होइ रँग,
कहैं कनक सौ लोइ।
पै पिय - पारस परस विनु,
काया कनक न होइ॥

पिय-पारस = प्रीतम रूपी पारस को।
परस = स्पर्श। कनक = स्वर्ण।

(१६९)

पीरौ परि फल पात हू,
तरुनि न छिन थिहराइ।
गिरै न पै हिय, विरह सौं,
तनु लौं वरु पियराइ॥

तरुनि = वृक्षों पर। थिहराइ = ठहिरता है।
पियराइ = पीला पड़ जाय।

(१७०)

नित प्रति पावस ही रहत,
वरसत आठौ याम।
ये नैना घनश्याम विनु,
आप भये घनश्याम॥

(१७१)

ये चख चाहत चार है,
चारहु चार कहाइ।
नयन नेह, लोये - लवन,
दृग द्युति, चख चपलाइ॥

लवन = लावण्यता। द्युति = प्रकाश।
चपलाइ = चांचल्य।

(१७२)

आश न नाकहु की करैं,
श्रुत सेवैं दृढ़ होइ।
दुर सौं दूर न रहैं क्यों,
सदा सयाने लोइ॥

आस = आशा, दिशा। नाकहु = नासिका तथा स्वर्ग की भी। श्रुत = कान तथा धर्म-ग्रन्थ। दुर = एक जेवर, तथा बुरे लोग। लोइ = नेत्र तथा आदमी।

(१७३)

जान्यो होत न खेलती,
कबहुं कान्ह सौं फाग।
जे भींजत अनुराग रँगि,
भुँजत अतनु की आग॥

अनुराग रंग = प्रेम के रंग में तथा लाल रंग में।

(१७४)

कवहुं सौत की अकस सौं,
कवहुं विरह की आग।
जरबौ वरबोई वदो,
आली हमरे भाग॥

अकस = ईर्षा।

(१७५)

दम्पति छाँह - शरीर द्वै,
विलग किये किहि हेत।
सिद्ध भये मोविन सजन,
भई सजन विनु प्रेत॥

सिद्ध पुरषौं के परछाँह नहीं होती। प्रेतों के शरीर नहीं होता।

(१७६)

नयन - नीरदहु ये कृपन,
वरसत कछु न विचारि।
सुख में स्वाँती - बूँद कछु,
दुख में मूसरधारि॥

नीरदहु = बादलों की भी।

(१७७)

एक विन्दु दृग - मसि गये,
चली रोशनी जात।
कस न गये फिर श्याम के,
दृग सौं, होवे रात॥

दृग-मसि = आखों की श्यामता।

(१७८)

तोरत मोरत तरुन कों,
जीवन सोखत जात।
चली कि आवत है जरा,
चलत कि झंझा वात॥

तरुन कों = वृक्षों तथा युवकों को। जीवन = पानी तथा जिन्दगी।

(१७६)

हरे रहो तुम हू हरी,
हरी रहैं हम सोइ।
कारे - पीरे परै नहिं,
विलगि विलग कोउ होइ॥

(१८०)

तव पद रज में, हे हरी,
एत्यो सकति न लखाइ।
नारी के बदले हमैं,
देवे सिला बनाइ॥

सकत = शक्ति। सिला = पत्थर।

(१८१)

जात पीयु की देहरी,
देत देहरी डार।
देहि न ऐसिन दे हरी,
जिन्हैं नेहु री भार॥

देहरी = घर। देत ....डार = देह डाल देती है।

(१८२)

कुवन करन निज सम जलध,
बरसत ह्वै जलदान।
लखैं न जातें ससि-मुखी,
अकस हिये यहि मान॥

जलदान = बादल। अकस = ईर्षा।

(१८३)

मुक्तन हू की यह दसा,
सेवत तिय के अँग।
भुक्तन की का चालिये,
जिन उर वसत अनँग॥

मुक्तन = मोतियों की तथा मुक्त पुरुषों की।
भुक्तन की = भोगियों की।

(१८४)

काको काया-कलप नहिं,
होइ विरह में ऐन।
दिन हू दिनपति के बिना,
पलट कहावै रैन॥

दिनपति = सूर्य। रैन = रात्रि।

(१८५)

नयन भये नीके गगन,
जहँ छाये घनश्याम।
जिह्वा भई पपीहरा,
रटे सु आठौ याम॥

(१८६)

नयनन कौं नीरज कहत,
साँचहु होत सँकोच।
पिय बिनु होत न सम्पुटित,
रहत खुले हू पोच॥

नीरज = कमल। सम्पुटित = बन्द।
पोच = मूर्ख।

(१८७)

पारौ मारो नहिं मरै,
जन धारौ यहि धारि।
मारौ मारो ना मरै,
तारौ भूल सुधारि॥

धारि = धारणा। मारौ = कामदेव। तारौ = तौलौ।

(१८८)

लख्यो, लखे बिनु हू बहुर,
लखैं सु नितहू नैन।
इन्हैं जहाँ पूनौ भई,
फेर अमावस हैन॥

(१८९)

मुख शशि सौं शशि अनु नहीं,
समसरि सोहत तोय।
बाहर हू तूँ दिपत-वह,
भीतर बाहर दोय ॥

(१९०)

को मिलाइ मुहिं हरी सौं,
को चलाइ मो बात।
साथ हरी के राधिका,
तहूं हरी है जात ॥

हरी = हरे रंग की तथा श्री कृष्ण भगवान्।

(१९१)

नहीं जनक के सामने,
दिखरावत निज ओज।
मन पिय में जा बसत जब,
मन की करत मनोज ॥

(१९२)

कासौं सीखी विरह ये,
रतिपति के विपरीत।
विलग विलग करि द्वै वपुन,
राज करन की नीति॥

(१९३)

सीदत भव रुज सौं सदा,
गुन न करत रस कोइ।
जाहि न लगत कवित्त-रस,
ताकी दवा न होइ॥

(१९४)

ये भूषन हू यहु भनत,
करि मृदु रव सुन बाल।
कै सराहुं निज साहु कौं,
कै अपने छतिसाल॥

साहु = मालिक। छतिसाल = छाती में सालने वाला, प्रेमी।

(१९५)

यौवन को यहि अवनि पर ,
विछा मुसल्ला साज ।
काह पढ़ावत है नहीं ,
आकैं जरा नमाज ॥

अवनि = पृथ्वी । मुसल्ला = वह वस्त्र जिस पर मुसलमान लोग नमाज़ पढ़ते हैं । जरा = नमाज ।

(१९६)

देत न काजर दृगन कों ,
आदर देत महान ।
जान परत बँधिया बँधे ,
हैं सरकारी स्वान ॥

बँधिया = पट्टा जो कुत्तों के गले में पहनाया जाता है ।

(१९७)

कोउ न सराहत तोहि विधि ,
रचत जु अस रुचि रूप ।
देखि सबै निज भाग्य पै ,
कोसत तोहि अनूप ॥

कोसत = गाली देते हैं ।

(१६८)

जीवन भर जासौं लगी,
सहियत ताको कान।
अपने उर के उदधि उरि,
डारत नदी परवान॥

(१६६)

कँह तें घट भरि ले चली,
रीत्यो कहूँ न लखाइ।
अपनो ही घट देखियत,
चली चपल उलटाइ॥

(२००)

किहिं न उसेउत आंसु बहि,
किहिं न उचेलत आह।
किहिं न वनावत विरह को,
भोजन, तेरी चाह॥

उसेउत = उवालते ।

(२०१)

काटत जाके वाहि के,
जियत लगाये नेह ।
नहीं स्वान सौं न्यून ये,
नैना विष के गेह ॥

कहावत है कि जिसका कुत्ता काटता है उसी का तेल लगता है । इसी तरह जिसके नेत्र काटते हैं उसी के नेह लगाने से मनुष्य जीता है ।

(२०२)

कैसे दीन दयालु प्रभु,
अबहु दाद ना दीन ।
रह्यो सुदामा दीन हू
हम दीनौ वे दीन ॥

(२०३)

है अति सीधी खोलबौ,
लज्जा की सरफूँद ।
पै जो फंदा में फँसत,
ताहि देत है खूँद ॥

सरफूँद = फंदा । खूँद = कुचल ।

(२०४)

झूठे हैं पंचाङ्ग सब,
ऋतु हू मिलत न कंत।
तुम हू जानत कब हमैं,
होत सु शरद वसन्त॥

(२०५)

को न आपनौ जगत में,
जीवन देत डरात।
विरह जरत यहि हिये में,
नींदहु धसत सँकात॥

सँकात = शंकित होती है।

(२०६)

जबरन तौ मन लियो पै,
लैहौ जबै मनाइ।
नाँह नाहिं में बूड़िहौ,
निहुं निहुं परिहौ पाँय॥

(२०७)

होड़ा - होड़ी वढ़त हैं,
विरह - जेठ दिन - मान ।
वढ़त निसा सुरसा सरिस,
दिवस सरिस हनुमान ॥

होड़ाहोड़ी = शर्त बदकर । विरह-जेठ = विरह रूपी जेठमास । सरिस = सदृश ।

(२०८)

पनघट कौं मरघट करौ,
जनि घट फोरो कूटि ।
घट घट में हरि तुम वसौ,
तुम हू जैहौ फूटि ॥

(२०९)

वदरा गरजत है नहीं,
विजुरी चमकत हैन ।
तोप दगत विरहीन पै,
लाज लगत विरहैन ॥

(२१०)

बोलत नहीं पपीहरौ,
पियु हू कोउ कहै न।
विरह-बादरन में कहूँ,
बिजुर्यू चमकत है न॥

(२११)

निधरक हरि पहिरें रहो,
धरौ न धरकि उतारि।
कौन अहीरिन को सकत,
कह, हरिन को हार॥

निधरक = विना डर। धरकि = डर के।
अहीरिन = अहीरों की स्त्रियां तथा जो
हीरों का नहीं है।

(२१२)

बजे तुम्हारे एक से,
बंसी संख मुरारि।
बंसी ब्रज बीहर कर्यो,
संख दिली संहार॥

(२१३)

दई सुगन्ध न सौन कौं,
बृथा दई कौं दोष।
सौने के यहि रूप पै,
सुचि सुगन्धि को कोष॥

(२१४)

अब लौं इन बिरहीन कौं,
पत्रा रच्यो न कोय।
जेठ जानती जब निसा,
दिन तें दूनी होइ॥

(२१५)

पलक पिटारिन में पले,
अहि काले द्वै नैन।
मंत्र न इनको है कछू,
अरि हू कबहु डसै न॥

(२१६)

उत्तर दक्खिन जाइँ कहुं,
उग्रन तरनि से नैन।
सम ऊषन पै रहत है,
यह मयूष सी सैन॥

तरनि = सूर्य। ऊषन = ऊष्ण गर्म।
मयूष = किरण।

(२१७)

दोरे आये गगन तें,
गरुड़ विना गज हेत।
सुनत न हरि गज-गवन की,
विरह - ग्राह जिय लेत॥

गज - गवनि = हाथी के सदृश चाल वाली।

(२१८)

वरत तोहि को अतनु सँग,
ऐंठत अरु ऐंड़ात॥
अतनु न देख दिखात है,
तेरो ध्वज फहरात॥

(२१९)

इन मृगनैनिन का भयो,
भजि भजि कुंजन जाँइ।
कुंज - विहारी - के हरी,
जहाँ वसैं विरमाँइ॥

कुँज ... के हरी = कुँजों में विहार करने वाले सिंह (श्री कृष्ण)

(२२०)

सोखत जीवन जो विरह,
है ग्रीषम ऋतु तात।
वरसत सोइ है, घन चलत,
पिय आवन को वात॥

(२२१)

चढ़्यो न यौवन रूप पै,
जात रूप रुचिमान।
देत लरकई अतनु कौं,
तुला सौन की दान॥

जात रूप = सोना। अतनु = कामदेव। देत ... दान = लरकाई का कामदेव को अपने वरावर तौल में, स्वर्ण दान कर कर रही है।

(२२२)

दई दई अँखियाँ सबै,
काहुन कौं पै और।
करती काहुन की कुटिल,
काहुनि आहत दौरि ॥

आहत = घायल।

(२२३)

तरुनि जरावत है तऊ,
उलटौ सौ कछु राग।
अँग अँगारे से दिपत,
बुझत जबै बिरहाग ॥

(२२४)

घूँघट कारागार हू,
दियौ तजैं चोरी न।
छूटत हू मन हरैं दृग,
गोरिन कछु खोरी न ॥

(२२५)

कस न होइ सो आँधरौ,
जिहिं आँखन में हूल।
यौवन की आँधी उड़ा,
भरत अतनु की धूल॥

(२२६)

दूरहि तें मुख छवि निरखि,
लेत आह कौ घूँट।
छके रहत नैना कृपन,
झूटहिं छाकि अटूट॥

(२२७)

पिय सौं पिय के नैन वे,
सौंहैं ही सुख दैन।
कीके जीके हैं पुन,
नीके ही के लैन॥

(२२८)

काजर दै अँखियान ने,
पिय हिय लीन्हौ मोल।
इक बिनु रसित इक रही,
अब दोउ सौने तौल॥

नायका के पास कुल एक ही हृदय था अतः दोनों नेत्र आपस में ईर्षा करते थे। यह जानकर नायका ने प्रियतम का हृदय भी मोल ले दिया।

(२२९)

चलि लहँका पै दीदि कै,
इत उत तें तजि धीर।
नेह नदी में लरि गिरे,
दोहुन के मन वीर॥

लहँका = वह लड़की जो पुल समान नदी नाले में डाल दी जाती है।

(२३०)

को न सिखावत मन कसौ,
रसौ न रस अस्लील।
सील भरे दृग देख पै,
को न देत मन ढील॥

(२३१)

देखत दृग परछाहिं,
पियन जु अंजुलि जल भरत।
समुझि मीन मन माहिं,
पुन पुन फैंकत भरत पुन ॥
(एक प्राचीन छन्द के आधार पर)

(२३२)

मैन सने नैनन कहा,
लिख्यो मो हिये बाल।
महिदी लौं जब रूप रँग,
चढ़ै सो पढ़ियो लाल ॥

(२३३)

जाहि देत दृग मात मिलि,
कस न होंइ वे चैन।
मात लगे ह्वै जात जब,
मन हू अपनो मैन ॥

(२३४)

ये ओही घनस्याम हैं,
जे छाँड़त थे तीर।
तो सौंहैं पिय आज ये,
ढारत नयनन नीर॥

(२३५)

ये भूषन भूषन वहै,
जनि इनकौं पतियाव।
यौवन - औरंग-यवन जनि,
इन सौं यस गववाव॥

भूषन = जेवन। भूषन = कवि। यौवन-औरंग = यौवन रूपी औरंगजेब।

(२३६)

भीषम लौं पिय विरहनी,
मर्‌यो ही चित लाइ।
कुसुमायुध के सरन की,
पोढ़ी सेज डसाइ॥

भीषम लौं = भीष्म के समान कुसमा ··· की = फूलों की।

(२३७)

जव लौं सँग हरि राधिका ,
हर्‌यो रहै यह वाग ।
विछुरत पीरी राधिका ,
स्यामहु कोरे काग ॥

(२३८)

परी विरह मरु - कुरँग ह्वै ,
प्यास प्रेम - जल भूर ।
प्रेम - सरोवर - स्यामरो ,
नियरे पहुंचत दूर ॥

विरह-मरु = विरह रूपी रेगिस्तान में ।
स्यामरौ = श्री कृष्ण अथवा श्याम रंग का ।

(२३९)

गरव न कर वानर - विरह ,
चढ़ि तिय - तनु तरु माहिं ।
केहर - हरि के पगन तरि ,
गिरहै चपतन छाहिं ॥

कहा जाता है कि यदि वन्दर की परिछाँह शेर के पैर तरे दव जाती है तो वह दरख्त से नीचे गिर पड़ता है ।

(२४०)

सहयोगिन सहगामिनी,
पिय तनु की हौं छाहिं।
आरति करत न सौत के,
पै, सब योग नसाहिं॥

आरति = आरती, प्रेम।

(२४१)

कुसुम - सेज कुसुमायुधहिं,
कैसें कहो सुहाइ।
दीठि-बिन्यो चौ चखन कौ,
परत जु पलँग लगाइ॥

कुसुमायुधहिं = कामदेव को (जिसके फूलों के हथयार हैं) कुसुम सेज = फूलों की शैया। दीठि बिन्यो = दृष्टि से बुना हुवा।

(२४२)

नैन - जमुन तें साथ मम,
मन - कंदुक लै हाथि॥
निकसौ गोपी - नाथ अब,
बिरह नाग कौं नाथि॥

नैन-जमुन = नेत्र रूपी जमुना से। मन-कंदुक = मन रूपी गैंद। बिरह-नाग = बिरह रूपी सर्प।

(२४३)

डारि लाज - रूमाल वटि ,
गरौ उमेठत ऐन ।
चलत वटोहिन को हरत ,
मन - धन ये ठग - नैन ॥

लाज-रूमाल = लज्जा रूपी रूमाल ।
उमेठत = जकड़ते हैं । मन-धन = मन
रूपी धन ।

(२४४)

ज्यों ज्यों तनु तें लरकई ,
झरत राख सी जात ।
अँग अँग आवत कढ़त नव ,
अँगरा से रत - गात ॥

(२४५)

ज्यों मुख - मूसादान में ,
छवि - कन हित धसि जात ।
चट कपाट घूँघट गिरत ,
मन - मूसक फसि जात ॥

(२४६)

इक वृज - माली के गये,
उजर गयो यह वाग।
कोइल जहँ वोलत रही,
तहँ वोलत अब काग॥

(२४७)

सो अयान पूँछे जु, क्यों,
लगे नैन सौं नैन।
पाये स्वजन विदेस को,
भटक्यो अंक भरैन॥

(२४८)

श्रुत सेवत हू नहिं भये।
नेकु निरामिष नैन।
पियत रकत जिहिं हिय लगत,
रक्त रहत दिन रैन॥

श्रुत = कान, धर्म ग्रन्थ।
निरामिष = मांस न खाने वाले।

(२४६)

समय - सूत रजकन-कुसुम,
जोरि प्रकृति सुकमार।
गुहत मीचु के हेतु रचि,
रुचि काया कौ हार॥

(२५०)

मन मानी ही करत हौ,
मानत कही न काय।
मान न राधे हरि कियो,
तोकों रही मनाइ॥

(२५१)

जड़ता करने हू परत,
जड़ के साथ अछेह।
तिय - तिल हेरे हू कढ़त,
तिल पेरे हू नेह॥

अछेह = लगातार। नेह = तेल, प्रेम।

(२५२)

आग और विरहाग की,
है कछु उलटी टेक।
एक बुझत ईंधन विना,
ईंधन विना न एक॥

ईंधन = जलाऊ लकड़ी इत्यादि। ईधन = इस स्त्री।

(२५३)

हाँथ न नापैं हाँथ कै,
प्रीतम इत सौं दूर।
पहुंचों उते जरूर जो,
नाप बतावें कूर॥

(२५४)

पर भृत कारे कान्ह की,
भगनि लगै सतभाइ।
ननद हमारी कुहिलिया,
कस न हमें तिनगाइ॥

पर भृत = दूसरे से पाले गये।

(२५५)

सौहैं होइ न सौत कहुं,
सविता की सी आँच।
अपने ही दृग होत लखि,
हियहिं आतसी - काँच॥

सविता = सूर्य। आतसी-कांच = आग लगाने वाला शीशा।

(२५६)

जरा जरा सब देखियत,
उजरा कहुं न लखाइ।
लखि कजरा उतरत नहीं,
काहि न नजरा आइ॥

जरा जरा = थोड़ा थोड़ा, जला हुवा। उजरा = उज्वल। नजरा = नजला जिससे धुँधला दिखने लगता है।

(२५७)

अनल अँग दै, दहन कौं,
भई होलिका मोहि।
पिय - प्यारी हौं निकसिहौं,
जरि जुदाई तोहि॥

(२५८)

हय गयकी का पीठ हू,
भई न तोकों ईठ।
चढ़्यो फिरत मो दीठ पै,
नीठ न उतरत ढीठ॥

(२५९)

लाग्यो तियतनु - तरुन में,
प्रीतम - रूप - रसाल।
काचे हू रात्यो फिरत,
वानर - विरह विसाल॥

प्रीतम-रूप-रसाल = प्रीतम का रूप रूपी आम।

(२६०)

कैसे उकटे नेह कौ,
अंकुर कोउ कहैन।
हँसियन उखरत कटत नहिं,
गोरस जारि सकैन॥

(२६४)

ओही ब्रज ओही विटप,
ओही विपिन विहंग ॥
विनु ब्रज - वानिक के भये,
वीहर वेरस रङ्ग ॥

ब्रज-वानिक = श्री कृष्ण ।
वीहर = उजाड़ ।

(२६५)

कित्यौ न जिह्वा जप करै,
तप न तपै वपु कौन ।
दृग हू वद्यौ अन्हाइवो,
विरह - मिलन संक्रौन ॥

संक्रौन = संक्राति ।

(२६६)

नैन भले वोलें सुनैं,
विनु जिह्वा विनु कान ।
हीरा कैसी हिये की,
करैं परख पहिचान ॥

परख = परीक्षा । हीरा की परीक्षा उँग-
लियों के इशारे से की जाती है ।

(२६७)

जेरी में ज्यों फल विधै,
तरु तैं लैयत तोरि।
त्यों युग अँखियन सौं तिया,
हिय कौं देत मरोरि॥

जेर = दो पुंच वाली लड़की।

(२६८)

स्वांसा के टूटे वहुर,
उर नहिं लेत उसाँसु।
आसा के टूटे गिरत,
टूट टूट ये आँसु॥

(२६९)

चढ़त्यो लै बूड़त पथिक,
समर धारियो पाँव।
नेह नदी में जर जरी,
यह नैनन की नाँव॥

(२७०)

आँजन हू आँसत न उहिं,
जन विछुरत हैं जासु।
आँखन में जैसे कछू,
आँसत जन के आँसु॥

(२७१)

यहि घट सौं वहि घट वड़ौ,
वहि कौ वड़ौ कुलाल।
गोपिन के जो सिर चढ़्यो,
फोर्‌यो जिहिं गोपाल॥

कुलाल = कुम्हार।

(२७२)

मोतिन कौं तिय वदन पै,
देखि अधिक छवि लेत।
उदधि, विपच्छी उन्हें गुनि,
कढ़वा उर तें देत॥

विपक्षी = दुश्मन।

(२७३)

नेह - सूत लै सुई सी,
तिय तकि दीठि चलाइ ।
काके सियत न आपने,
नैनन नैन मिलाइ ॥

काके-मिलाइ = अपने नेत्रों से मिलाकर किसके नेत्रों को नहीं सीं लेती ।

(२७४)

कहि कहि जात कलीन के,
कानन में अलि आइ ।
आँग न दैयो और को,
आँगन हू किन छाइ ॥

(२७५)

चली तु तिय लै घट भर्यो,
सगुन कियो पै कौन ।
चली जरावत सवन कौं,
किंछत चली जलौन ॥

(२७६)

क्योला हू आगी लगे,
उज्वल होत अँगार।
विरह जरत जो काहु के,
गोरे होत मुरारि ॥

(२७७)

भली फाग खेली हरी,
सबहिं हराओ वीर।
पै मुख देखो मुकुर में,
लखियत लखो अबीर ॥

(२७८)

हरी रहैं नित राधिका,
स्याम रहैं नित सौंहि।
वृज में सावन छोड़ि कें,
पावन और न हौंहि ॥

(२७९)

रोइ रोइ पावस करी,
कोइ कामिन विनु कंत।
आसौं ब्रज में हरि बह्यो,
बारह बाट बसन्त।

(२८०)

मीन केतु की भसम लै,
विधि विरच्यो तिय रूप।
याही तें है अतनु वह,
तिय तनु बस्यो अनूप॥

(२८१)

तिय के रूप रसाल पै,
सम्हरि उपल - दृग घाल।
उलटि लगे तौ फूट है,
तेरचो कुटिल कपाल॥

रसाल = आम्र वृक्ष। उपल-दृग = पत्थर रूपी दृग।

(२८२)

खुलत मिलत पंचाङ्ग से,
पल पल पलक पवित्र,
सोदत तिथि हिय लगन की,
दम्पति - दृग - द्विज मित्र ॥

(२८३)

धर्म कर्म विसरे सबै,
टूटे सब श्रुति सेतु ।
रोप्यो मयन - मलेच्छ ने,
वपु - भारत में केतु ॥

(२८४)

कब कब आये लौटि कें,
किते न मारे वीर ।
नयन नहीं ये मयन के,
तीर नहीं तूनीर ॥

(२८५)

कोये लाल न हियो जो,
जरत विरह की झार।
चख - चकोर चौंचन दवा,
ले भागे अंगार॥

(२८६)

औरे रस औरे हरस,
औरे सरिस लखाइ॥
किहँ रसाल की दृग दई,
तोपै कलम लगाइ॥

हरस = प्रसन्नता। सरिस = सदृश।
रसाल = आम।

(२८७)

बूढ़ भये तो का भयो,
चस्मा देत न नैन।
वार करन वचि तियन पै,
ढाल लेत हैं ऐन॥

(२८८)

लगा विरह की आग हिय,
अँखियाँ नित उसकाँइ ।
कानन सौं ये भ्रू नहीं,
लकरिन लाइ लगाँइ ॥

(२८६)

होत हँसी सौं हाँ हरी,
हमैं नें हेरि हसाँव ।
हम न हरी है वांसुरी,
हमें न हार हराव ॥

(२६०)

दम्पति ज्यों ज्यों हृदय लगि,
हौवो चाहत एक ।
सन्तति दै विधि एक तें,
त्यों त्यों करत अनेक ॥

(२६१)

गरु गोधन कै गौर धनि,
तुमहु कहौ निरधारि।
धरचो गौर धनि हेतु हरि,
गरु गोधन गिरधारि।

गरु = वजनदार। गौर धनि = गोरी स्त्रियाँ।

(२६२)

खोल न घूँघट ससि-मुखी,
होइ न कहूँ अकाज।
बाढ़ न आवै उदधि में,
लौट न जाँइ जहाज॥

(२६३)

मुख - मयंक पै तीय के,
भर्यो प्रेम को पंक।
नयन - उपल घालो नहीं,
आहै ऊपर अंक॥

नयन-उपल = नेत्र रूपी पत्थर।

(२९४)

अपने ये छवि कन सुमुखि,
मम उर में जन ऊर।
हैं कन हीरन के कठिन,
करिहैं उर कौं चूर॥

(२९५)

मन-पतङ्ग - गुन - दीठि के,
परैं न पैंच बचाव।
कटत न काटे कटे ये,
सुरझे नहिं सुरझाव॥

(२९६)

कितनी बेरा बोल कैं,
करैं प्रात तम चूर।
सदा रहत तम चूर हू,
लखि मुख कौ यह नूर॥

तमचूर = मुर्गा। तम = अँधेरा। चूर = नष्ट।

(२९७)

पाँसे से फैंकत सखी,
खासे नैन बनाइ ।
कोटिन डारत विरह में,
गोटिन सरिस पकाइ ॥

कोटिन = करोड़ों को ।
गोटिन = खेलने के मुहरे ।

(२९८)

मोह चूर सब होत है,
द्रोह होत है दूर ।
ओहि नूर सौं मिलत है,
कोहनूर कौं नूर ॥

(२९९)

जरा - विजित हू देत हैं,
जरा न, नेह विचारि ।
जरा न नेह कौं देत कै,
कजरा नैनन नारि ॥

जरा-विजित = बुड्ढे । जरा = थोड़ा भी ।
जरा = जलाकर । नेह = तेल, प्रेम ।

(३००)

जात न अबहूं ऊवरी,
जड़हु खूबरी प्रान।
भई दूवुरी तऊ नहिं,
देत कूवुरी त्रान॥

दूवुरी = दुर्बल, दुवु + री। कूवुरी = कुबड़ी
कू + वुरी = कु = पृथ्वी।

(३०१)

छवि-कन पलकन फटकि तिय,
फैंकत जे कन हैंन।
होत अकिंचन जगत कौं,
कंचन कन ते ऐन॥

अकिंचन = गरीब।

(३०२)

बड़े छुटे हौ परगटे,
जात न उहि की वाट।
कटे कटे से फिरत, पै,
कटे ओहि के काट॥

(३०३)

बड़े नाज सौं कढ़त हैं,
लाज लदे कछु बैन।
लादि मनहुं गन-राज कौं,
मूसी भाज सकैन॥

गनराज = गणेश जी।

(३०४)

मान कियो कस जात कस,
लीन्हो छिनक विराग।
पिय लखि छिन कौं छिकत नहिं,
तनु में मन को राग॥

(३०५)

गगन जान्हवी जान जन,
परी काँचुरी मान।
भजि भीतर डसिहै अबहिं,
निसि - नागिनि कहुं आन॥

गगन-जान्हवी = आकाश गंगा।

(३०६)

भली सिफत तोमें अरी,
विपति होइ का तोइ।
तूँ अपने पति के बिना,
आपहुं पतिरी होइ ॥

पतिरी = दुर्बल, तथा पति + री।

(३०७)

जब लौं बीजक ह्वै मिलैं,
नहीं नैन कौं नैन।
तन के कन कन हू किये,
मन - धन कोउ पावै न ॥

कन कन = कण कण।

(३०८)

कहा सनक है घूँघटन,
विचरत बनक वगारि ॥
अँखियन में चालत चलत,
कनक सरिस सुकमारि ॥

बनक = सौन्दर्य। वगारि = फैलाती हुई।
कनक = स्वर्ण।

(३०९)

टूटत निकसत नाग से,
विरहिन को जिय लैन ॥
नहिं उड़गन, अंडा धरे,
निसि - नागिन ए ऐन ॥

उड़गन = तारे।
निसि-नागिन = रात्रि रूपी नागिन।

(३१०)

देखि भेष - भूषा भली,
का की भजत न भूख ॥
को न भिखारी होत पै,
पी पी रूप - पियूष ॥

(३११)

नेकु लजीले हैं नहीं,
तरजी लेहैं ऐन।
जीले सौंहैं होत नहिं,
डर जीले ये नैन ॥

सौंहैं = सामने। डर-जीले = जी में डर
लेकर।

(३१२)

काह न पेरत, पीर को,
परत न ह्वै हत - चेत ।
प्रीतम तेरी प्रीति यह,
किहिं न लगत ह्वै प्रेत ॥

पीर = पुरखा, पूज्य पुरुष ।

(३१३)

किते न गिरि कपिवर लिये,
तियन तिलांजुलि देइ ।
गिर - धर वोही होत जो,
तियन साथ गिरि लेइ ॥

कपिवर = हनुमान जी ।

(३१४)

आह भरत रहि रहि अनिल,
आपहुं जरत पलास ।
रोउत कोइल चीरि उर,
आयो का मधु मास ॥

(३१५)

छिप्यो कहूं हरि आन कैं,
चलि कैं ढूढ़ अयान।
देखत नहिं खरयान हू,
लगे बहुरि हरियान॥

हरियान = हरे होने लगे तथा हरीमय होने लगे।

(३१६)

रैकिट-निसि-दिन - सन्धियुग,
गगन जान्हवी नैट।
रवि ससि कंदुक, नारिं दिसि,
खेलें टेनिस सैट॥

रेकिट = खेलने का बल्ला। सन्धि युग = दोनों संध्यायें (संध्या ओर सवेरा) नारि दिसि = दिशाओं रूपी स्त्रियाँ।

(३१७)

दल साजत वेकाज कत,
घन विरहिन के काज।
गरजन हू तें जे मरें,
तिनपै पटक न गाज॥

(३१८)

नेह भरे दृग - दीप में,
बाती लाज जराइ।
जो पिय की आरति करै,
आरत कौन न जाइ॥

आरत = दुःख।

(३१६)

कैसे बरिजौं, धीर धर,
हियो न आपनो चीर।
जाहि होत है पीर सो,
अवस होत बेपीर॥

(३२०)

को न बहानो जानिहै,
वृथा छुड़ावत बाँह।
बैनन में नाहीं बसी,
नैनन में वहि नाँह॥

(३२१)

वानो लेत विदेह कौ,
बिसरत अपनी बान।
जाहि लगत दृग - वान है,
ताहि मिलत निर्वान ॥

वान = आदत। निर्वान = मोक्ष पद।

(३२२)

जब लौं तनु में स्वांस है,
तब लों तेरी आस।
जब लों तेरी आस है,
नहिं तेरो विस्वास ॥

(३२३)

बाल रह्यो अति बली कै,
बली कै अति यहि बाल।
अरध अरध बल लेत है,
यहि को इक इक बाल ॥

बाल = सुग्रीव का भाई। बल = शक्ति लचक।

(३२४)

सन्ध्या माँहि सयोंग की,
दृग - दिहरी के बीच।
विरह ? तोहि पिय मारिहै,
हिरनाकुस सौं नीच॥

(३२५)

ना बाहर ना भीतरै,
ना दिन में ना रैन।
पिय बिनु मरत न बिरह कहुं,
हिरना - कुस सौं ऐन॥

(३२६)

का संचित नर करत है,
किंचित बच्यो न तोइ।
गुनत दिनारू होत है,
ज्यों ज्यों अदिना होइ॥

दिनारू = बहुत दिनों का अथवा बहुत दीनारों का (दीनार = एक सिक्का)
अदिना = दिनों से हीन तथा निर्धन।

(३२७)

कहाँ अहीरन राखिहै,
हरि कों हिये छिपाइ।
जो तेरे हिय में छिपत,
हेरन देत बताइ॥

(३२८)

जिन्हें मयन असर न करत,
नयन सर न दुख देत।
विसरन देत न जे हरिहिं,
तिन्हें सरन हरि लेत॥

(३२९)

देखि थकी सखि भली विधि,
दुक्ख न तोहि दिखाइ।
कौन सुक्ख की खोज में,
ठाढ़ी गई सुखाइ॥

(३३०)

विरह - बवन्डर में परी,
पिय बिनु डगमग होत,
परी रहत पर्यंक पै,
पानी में जनु पोत,

(३३१)

दोष न दे नदलाल कों,
दहत जु तुहिं विरहाग।
अंग अंग तूँ दल मल्यो,
उगल भग्यो दावाग ॥

दावाग = दावाग्नि जिसको कि श्री कृष्ण जी ने पान कर लिया था।

(३३२)

मिल्यो न उन ब्रज तरुन हू,
भये जु जरिकैं राख।
राख चढ़ाये हरि मिलत,
देओ ऊधो साख ॥

(३३३)

मंगन हू मागत नहीं,
देत होत कछु जो न।
देव्यो ही तेरो निरखि,
मागत जिन मागो न॥

(३३४)

लाखन सौहैं मात के,
आँखन सौहैं जात।
माँखन सौहैं खात है,
माखन सौहैं खात॥

सौहैं = सामने तथा कस में।

(६३५)

कहा सिखावत हौ हमें,
ऊधो योग विराग।
राख चढ़ावे कों कहत,
इतै चढ़ी विरहाग॥

(३३६)

भूल न छन कों छक्यो लखि ,
छन्ना है यहि गात ।
छानि छानि जम पियत है ,
छन छन जीवन जात ॥

(३३७)

राधा सब बाधा हरैं ,
श्याम सकल सुख दैंय ।
जिन उर जा जोरी बसै ,
निरबाधा सुख लैंय ॥

॥ इति ॥

शुद्धि पत्र

दोहा सं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	वद्न	बद्न
१३	लेन	लैन
१६	वताय	बताय
२५	नरि	नारि
३१	प्रभात	परभात
३२	गिरयो	गिर्यो
३४	पहिलै	पहिलैं
४८	वना दई रिन	दई बानिरिन
७८	सौं	सौ
८८	चखम	चखन
१२२	परि	पीर
२११	हरिन	हीरन
२१५	हू	हूँ
२२०	को	की
२२७	है	हैं न
२२८	रसित	रीसत
२२७	लखो	लगो
२८६	ने	न
२६६	जरान	जरा

विद्वानों की सम्मतियाँ

(१)

राय बहादुर राव राजा श्री पं० श्यामबिहारी जी मिश्र
सभापति साहित्य सम्मेलन प्रयाग

हमने बाबू अम्बिका प्रसाद वर्मा बी० ए० कृत दिव्य दोहावली के ३३७ दोहाओं का अवलोकन किया। वर्मा जी रियासत अजयगढ़ निवासी, यहाँ टीकमगढ़ के सवाई महेन्द्र हाई स्कूल में अध्यापक हैं।

आपकी कविता मुझे बहुत रुचिकर प्रतीत होती है वह ब्रजभाषा दोहाओं में पुराने ढंग पर लिखी गई है और कई अंशों में उसका प्रसिद्ध कवि बिहारी लाल की सतसई से मिलान हो सकता है।.........विचार चातुर्य, सूक्ष्म दृष्टि, उच्च भाव, श्लेष बाहुल्य, मर्मज्ञता, भाषा प्रौढ़ता, अनेक नूतन प्रकार के रंग ढंग इत्यादि को देखते हुए वर्मा जी की हार्दिक प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। स्वरचित कुछ अच्छे चित्र देकर वर्मा जी ने दिव्य दोहावली की मनोहरता में श्लाघ्य वृद्धि कर दी है।

मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ हिन्दी रसिकों को पसन्द होगा।

टीकमगढ़
२६-४-३६

विनीत—
श्याम बिहारी मिश्र,
("मिश्र बन्धु" में एक)

(२)

श्रीयुत बा० वृन्दाबनलाल जी वर्मा
एडवोकेट, झाँसी

श्रीयुत् अम्बिका प्रसाद वर्मा ने दिव्य दोहावली की एक हस्त लिपि मेरे पास भेजने की कृपा की थी। अनवकाश के कारण मैं उसको शीघ्र न देख सका। जिन लोगों को बिहारी मतिराम इत्यादि की कविता पढ़कर आनन्द प्राप्त होता है और जो उनकी अनोखी काव्य कला में अपने अनेक मानसिक क्लेशों को भूल जाते हैं उनको श्रीयुत् वर्मा की यह दिव्य दोहावली भी अवश्य पसन्द आयगी। मुझे इस बात के स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि ब्रजभाषा के पेचों के समझने की शक्ति मुझमें बहुत अल्प है। स्नेह के नाते मैंने श्रीयुत् वर्मा की दोहावली को पढ़ा और समझने का प्रयत्न भी किया। अलंकारों का कवि ने प्रचुर प्रयोग किया है। शब्दों और उक्तियों के विचक्षण प्रयोग तथा विख्यात पौराणिक घटनाओं के चतुर उपयोग ने मेरे मन में बहुत कुतूहल बढ़ाया। कुछ दोहे तो आपके मुझको बड़े विचित्र जान पड़े ; यथा :—

(६)

नयन - नीर - निधि की कछू ;
उलटी चाल लखाय।
मुख शशि देखे घटत जल ,
बिनु देखे उमड़ाय ॥

(३०)

बिन्दी लाल लिलार पै,
दई बाल यहि हेत।
समझैं आवत दृग - पथिक,
खतरा कौ संकेत॥

(४३)

रूप कूप में सुमुखि के,
मन - घट देख अरैन।
फेर न रीतत भरे तैं,
रीते बिनु निकसैन॥

इत्यादि। मनोरञ्जन और कुतूहल बर्धन की इस दोहावली में काफी सामग्री है।

मैं श्रीयुत् वर्मा जी से अनुरोध करूँगा कि और बिषयों पर भी कुछ और लिखें और हिन्दी के भन्डार को भरें।

झाँसी
१२-५-१९३६

बृन्दाबन लाल बर्मा
एडवोकेट